अध्याय - १

पत्र-साहित्य : सैद्धान्तिक विवेचन

अध्याय:१

पत्र-साहित्य : सैद्धान्तिक विवेचन

पत्रों का महत्व :

गद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं में, अपनी वैयक्तिकता, अनौपचारिकता, हार्दिकता आदि विशेषताओं के कारण, पत्र को विशेष महत्व प्राप्त है। यद्यपि पत्र-लेखन मनुष्य के लिए सहज और अनिवार्य क्रिया है, किन्तु जब किसी व्यक्ति के पत्र उसके व्यक्तित्व की गरिमा के कारण मानव-समाज को प्रभावित करते हैं तब वे महत्वपूर्ण हो उठते हैं। ऐसे ही पत्र प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाते हैं।[१]

हमारे व्यक्तिगत सम्बन्धों की नींव पत्राचार सुदृढ़ करता है। आत्मीयजनों से वार्तालाप और पत्र-व्यवहार करने से हमें अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है।[२] जिस प्रकार हरे-भरे पत्रों अर्थात् पत्तों के बिना तरुवर शुष्क और नीरस लगता है, उसी प्रकार स्वजनों के प्रेमपूर्ण पत्रों के बिना जीवन सूना-सूना और खोया-खोया-सा जान पड़ता है।[३] जीवन की निपट एकान्तता को दूर करने तथा सहृदय मित्रों के सान्निध्य का सुख-लाभ करने का एक मात्र उपाय पत्र-लेखन ही है।[४]

---

१ (क) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्दशभाग (वि० २०२७), संपा० डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० ५०७।

(ख) Some letters have expressed so much of the charm and personality of their writers that they are regarded as part of the literature of the world."

-"Compton's Pictured Encyclopedia & Fact-Index," Vol.-8,(1955), P. 171.

2"There is a pleasure annexed to the Communication of one's ideas, whether by word of mouth or by letter, which nothing earthly can supply the place of."

- William Cowper.

-"The Book of Unusual Quotations"(1964),P.151.

3."The Life of man without litter is death."

-Seneca.

-"Benham's Book of Quotations"(1948), P.731.

4."Letter-writing is the only device for combining. Solitude and good company."

-Lord Byron.

-"The Penguin Dictionary of Quotations(1960), P. 90.

हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार पं० वियोगी हरि ने श्री-रामशंकर द्विवेदी के नाम प्रेषित अपने २२-३-१९६८ के पत्र में लिखा है- "- - - पत्रों में अजेय शक्ति होती है, यदि हम अपना हृदय उनमें उड़ेल सकें। जितने भी भाई मुझे मिले, वे सभी पत्रों की देन हैं। गुरुदेव - रवीन्द्रनाथ के चरणों की धूलि भी पत्रों की ही बदौलत मिली।"[1] इस प्रकार पत्र एक सुदृढ़ सेतु है।

पत्रों के प्रति हमारे मन में कितना आकर्षण होता है, इसकी ओर इंगित करते हुए "ज्ञानोदय" के पत्र विशेषांक में कहा गया है कि - "पत्रों में एक अनूठा आकर्षण, बल्कि अजीब-सा रहस्य होता है। यह हमारा रोज़मर्रा का ही अनुभव होगा कि दफ़्तर से लौटकर "लेटरबक्स" पर हमारी निगाह जाती है।"[2] सुप्रसिद्ध आंग्ल कवि लॉंगफेलो ने भी पत्रों के इस महत्व को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया है।[3] इससे कहा जा सकता है कि संवेदनशील व्यक्तियों के पत्र केवल कागज़ के टुकड़े ही नहीं होते, उनमें भावनाओं का स्पन्दन होता है, हृदय की धड़कनें होती हैं। गुरुदेव टैगोर की "छिन्न पत्रावली" में जैसा उनका हृदय धड़कता है, वैसा "गोरा" में नहीं।

---

१ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४) संपा० बाबू वृन्दावनदास, पृ० २९५।

२ "ज्ञानोदय", पत्रांक, नवम्बर १९६३, सम्पादकीय टिप्पणी।

3. " Kind messages, that pass from land to land,
Kind letters, that betray the heart's deep history,
In which we feel the pressure of hand,
One touch of fire-and all the rest of mystery."
- Longfellow.
-"Stevenson's Book of Quotations."
Fourth Edition, P. 1102.

पत्र कभी पुराना नहीं पड़ता, चाहे कागज़ भले ही जीर्ण हो जाय।[1] पत्रों को यदि हम संभालकर रखें और महीनों-वर्षों के बाद फिर से उन्हें पढ़ें तो वे एक दिलचस्प उपन्यास-सा आनन्द दे सकते हैं। हिन्दी की प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका शिवानी ने अपने नाम आये पाठकों के पत्रों के विषय में लिखा है कि - "मेरे पास विवाहप्रस्ताव से लेकर भावी वधू पसन्द करने, "डाइवोर्स" में राय देने तक के पत्र आते हैं। यदि उन्हें कभी पढ़ने बैठती हूँ तो लगता है, कोई रोचक उपन्यास पढ़ रही हूँ।"[2] जब पाठकों के पत्रों में इतनी रोचक सामग्री मिलती है, तो साहित्यककारों और महापुरुषों के पत्र कितने उत्प्रेरक एवं मनोरंजक होंगे? महान् शब्दमर्मी डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का पत्र पं० बनारसीदास - चतुर्वेदी के लिए सात्त्विक, मानसिक भोजन का भोज ही हो जाता था।[3] माननीय श्रीनिवास शास्त्री की कलम से लिखे गये एक पोस्टकार्ड में भी उनके मित्रों को सौंदर्य और आनन्द की अपूर्व झलक मिल जाती थी।[4] सारांश यह कि साहित्यकारों एवं विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के वैयक्तिक पत्र भी बड़े उत्प्रेरक और आनन्ददायक होते हैं।

---

१ "मिट गये मेरी उम्मीदों की तरह हर्फ़ मगर
आज तक तेरे खतों से तेरी खुश्बू न गई।"
- अख्तर शीरानी
(उद्धृत: "प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र," : १९६१, पृ० ५)

२ "साहित्यकारों की डाक" (परिचर्चा), "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", १ फरवरी, १९७०, पृ० ३४।

३ "जिस दिन स्पष्ट अक्षरों में लिखा गया उनका विस्तृत पत्र आता था, उस दिन मानो सात्त्विक, मानसिक भोजन का भोज ही हो जाता था और मैं अपने साथियों के साथ उस पत्र का उपभोग करता था।"
- "स्वर्गीय वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र," "सम्मेलन पत्रिका", भाग-५२, सं० ३-४, पृ० ३०।

४ "Mr. Sastri is a master in the art of letter writing. His friends knowthat even a post-card with a fewlines from his pen is a thing of beauty and a joy for ever."
-"Letters of Srinivasa Sastri"(1963), Editor-T.N.Jagadisan, Preface, P. VII.

सामाजिक दृष्टि से भी पत्रों का महत्व कम नहीं है। आज मानव जीवन इतना फैल गया है कि एक परिवार के सभी व्यक्ति एक ही जगह सीमित होकर नहीं रह सकते और "इस प्रकार उनके असीमित विकास को प्रेम तथा सूचना के बन्धन में बांधने का श्रेय पत्रों को ही है।"[1] परिवार से अलग होने पर परस्पर मिलन में अंतराल पड़ जाता है। अतः एक दूसरे के प्रति स्नेह-सम्बन्धों तथा बदलते रहनेवाले दृष्टिकोणों का परिचय पत्रों से ही प्राप्त हो सकता है।

देश-विदेश में बसनेवाले समवयस्क और समान विचारधारा के व्यक्तियों से पत्रों के द्वारा मित्रता भी स्थापित की जा सकती है। "साथ रहते-रहते तो पिता-पुत्र और पति-पत्नी में नरम-गरम बातें भी हो जाया करती हैं, किन्तु पत्रों के माध्यम से जुड़े मित्रों से कभी ऐसी नौबत नहीं आती और दोनों ओर से स्नेहिल-सम्बन्ध बने रहते हैं।"[2] इस प्रकार "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श की पूर्ति के लिए पत्रों का योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी पत्र एक उत्तम माध्यम है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में "विश्व के प्रति अनन्त मैत्री की भावना ही संस्कृति है।"[3] युगविधायक महापुरुषों एवं साहित्यकारों की पत्र-मैत्री हमारे सम्मुख विश्व-मैत्री का आदर्श प्रस्तुत करती है। मार्क्स और एन्जल्स की पत्र-मित्रता विश्व-इतिहास में सुप्रसिद्ध है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ द्वारा दीनबन्धु एण्ड्रूज को अंग्रेजी में लिखे गये पत्र "लेटर्स टु ए फ्रेन्ड्ज" (Letters to a Friends) शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं। यह पुस्तक लन्दन से प्रकाशित हुई है और "मित्र के नाम पत्र" शीर्षक से इसका हिन्दी अनुवाद भी बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुका है।[4] विश्वविख्यात रूसी साहित्यकार लियो टाल्सटाय द्वारा सन् १८८७ ई० में

---

१ यज्ञदत्त शर्मा : "प्रबन्ध-सागर" (१९५५), पृ० २९।

२ व्रज भूषण दुबे : "पत्रों की महत्ता तथा पत्र-मित्र" (लेख), "पत्र-मित्र", मई-जून १९७८, पृ० २०

३ "कला और संस्कृति" (१९५८), भूमिका।

४ "मित्र के नाम पत्र" (१९४९), अनु० सुरेशचन्द्र शर्मा, प्रका० शिवलाल-अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।

फ्रांसीस नवयुवक रोमां रोलां को जो पत्र लिखा गया था, वह कला और सांस्कृतिक विचारों से ओतप्रोत था। उस पत्र ने युवक रोमां रोलां की जीवन-धारा ही बदल दी।[1] उन्हें इस बात की बिलकुल आशा नहीं थी कि टाल्सटाय जैसा महान् लेखक उन जैसे एक मामूली विद्यार्थी के पत्र का उत्तर देगा, किन्तु टाल्सटाय ने ३८ पृष्ठ का जवाब भेज दिया। बस उसी दिन से रोमां रोलां ने निश्चय किया कि यदि कोई आदमी अपने संकट के समयमें अपनी अन्तरात्मा से प्रेरित होकर पत्र लिखेगा तो उसका अवश्य उत्तर दूंगा। परिणाम स्वरूप उन्होंने सहस्रों ही पत्र लिखे। रोमां रोलां के ग्रंथों के समान उनके पत्रों का भी महत्व है, जिनके द्वारा उन्होंने सैकड़ों लेखकों का पथ-प्रदर्शन किया था और असंख्य दु:खितों तथा पीड़ितों के हृदय को सांत्वना प्रदान की थी। टाल्सटाय की उस एक चिट्ठी ने जो बीज बोया था, वह वट-वृक्ष के रूप में पल्लवित हुआ।

लियो टाल्सटाय का ७-९-१९१० को महात्मा गांधी के नाम लिखा पत्र भी सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यह पत्र क्या था, अहिंसा पर विस्तृत भाष्य था।[2] इस उत्कृष्ट पत्र को अपने पास सुरक्षित रखने के लिए लन्दन के एक व्यापारी ने २८०० पौंड चुकाये थे। इस प्रकार सांस्कृतिक विचारों के विनिमय में पत्र बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पत्रों का बड़ा महत्व है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध पत्र-लेखक डा० सेम्युअल जानसन ने अपनी एक महिला मित्र के नाम प्रेषित २७-१०-१७७७ के पत्र में लिखा था- "देवी जी, एक व्यक्ति के पत्र में उसकी आत्मा निरावरण होती है।"[3] इस दृष्टि से किसी भी

---

१ इस पत्र के विस्तृत विवरण के लिए देखिए : "पत्र-लेखन कला", (१९५७), बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ० ११-१२।

२ इस पत्र की विस्तृत जानकारी के लिए देखिए : "नवभारत टाइम्स", २७ मई, १९७६, पृ०१।

३ "In a man's letter, you know, Madam, his soul lies naked."- "पत्रों का महत्व" (लेख), पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, "नवनीत," अप्रैल १९७९, पृ० ४५ से उद्धृत।

व्यक्ति की मनोदशा का यथार्थ चित्र उसके पत्रों में ही अंकित होता है। यही कारण है कि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के प्रकृत चरित्र के अध्ययन के लिए उनके द्वारा लिखे गये पत्र बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। डा० विश्वनाथ शुक्ल के शब्दों में - "किसी कवि, विद्वान्, दार्शनिक, कलाकार या विशिष्ट साधक के मन पर किसी विशिष्ट घटना, परिस्थिति या दृश्य की कैसी प्रतिक्रिया होती है, किसी व्यक्ति के प्रति उसकी रागद्वेषात्मक कैसी धारणा है, उसके विभिन्न मनोवेग - काम, क्रोध, लोभ मोह, भय, ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, नैराश्य, घृणा, विस्मय, करुणा, स्नेह, संकोच, औदार्य, संतोष, कृपा, सहानुभूति आदि किस कोटि के हैं, ये सब मनोविकार उसके पत्रों में प्रतिबिम्बित हो उठते हैं।[१] प्रसिद्ध आंग्ल पत्र-लेखिका एमिली डिकिन्सन को मित्र के मनोभावों को प्रतिबिम्बित करनेवाला पत्र अमरत्व की अनुभूति जैसा प्रतीत होता है।[२] इस प्रकार मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार, गुण-दोष और उनके मन की दशा को प्रकट करने में पत्र बहुत अंश तक समर्थ होते हैं।

साहित्यिक दृष्टि से भी पत्रों का विशिष्ट महत्व है। प्रसिद्ध साहित्यकारों के वास्तविक व्यक्तित्व के परिचय के लिए उनके वैयक्तिक पत्र उनकी साहित्यिक कृतियों से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। किसी साहित्यिक कृति में कृतिकार का जो रूप प्रकट होता है, वह प्राय: कला और कल्पना के पर्दे के पीछे छिपकर आता है, परन्तु पत्रों में उसका सही-सही रूप दृष्टिगत होता है, बशर्ते उसके पत्र-लेखन में ईमानदारी बरती गयी हो।

श्री बैजनाथसिंह "विनोद" के मतानुसार "पत्र भी कविता की भांति ही हृदय के उद्गार हैं, जहां पत्र-लेखक अपने हृदय को उड़ेल कर रख

---

१ "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग (वि०सं० २०२७) संपा० डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० ५०७।

२ "A letter always feels to me like immortality because it is the mind alone without corporeal friend."
- The Letters of Emily Dickinson" (1965), Vol.-1., Edited by Thomas H. Johnson, P. 447.

देता है । पर हर एक व्यक्ति में यह क्षमता नहीं होती, प्रत्येक व्यक्ति को यह कला नहीं प्राप्त होती कि वह पत्र पर अपने हृदय को रख सके । इसीलिए पत्र-लेखन को भी "कला" माना जाता है ।"[1] पत्र को जब हम कला और साहित्य के रूप में देखते हैं, तो उसकी अपनी कुछ विशेषताओं को भी ध्यान में लेते हैं । अन्य साहित्य-रूपों की अपेक्षा पत्रों का महत्व इसलिए अधिक होता है कि उनमें भावना की अभिव्यक्ति बहुत-कुछ अकृत्रिम रूप में होती है और उनमें एक प्रकार की विश्वसनीयता होती है कि इन पर सर्वसाधारण की दृष्टि न पड़ेगी । यही कारण है कि लेखक के व्यक्तित्व, कृतित्व और समकालीन परिस्थितियों के सम्बन्ध में जो प्रामाणिक तथ्य पत्र-साहित्य में उपलब्ध होते हैं, वे अन्य साहित्य-रूपों में नहीं । इससे अनुसंधान को बल मिलता है और अनुसंधित्सुओं की कुछ गुत्थियां अपने आप सुलझ जाती हैं ।

पत्रों के माध्यम से साहित्यिक सर्वेक्षण के प्रयास भी किये जा सकते हैं । "कादम्बिनी" के सम्पादकों ने सन् १९७० ई० में विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी-विभागों में पत्र भेजकर हिन्दी के सबसे लोकप्रिय पांच उपन्यासों का सर्वेक्षण किया था ।[2] इसी प्रकार फरवरी १९७० में "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" के सम्पादकों ने प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकारों के पास पत्र भेजकर इस विषय में सर्वेक्षण करने का प्रयास किया था कि उन्हें प्रतिमास पाठकों के कितने पत्र मिलते हैं, पाठक अपने पत्रों में प्रायः क्या लिखते हैं, क्या वे पाठकों के सभी पत्रों का उत्तर देते हैं आदि । यह रोचक सर्वेक्षण इस पत्रिका के दो अंकों[3] में "साहित्यकारों की डाक" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था । सन् १९७८ ई० में प्रकाशित "धर्मयुग" के दीपावली विशेषांक में "पाठकीय प्रेम-पत्रों से उलझती लेखिकाएं" शीर्षक परिचर्चा[4] में भी इसी प्रकार के सर्वेक्षण का प्रयास किया गया था ।

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), भूमिका, ("क")से उद्धृत ।
२ देखिए: "कादम्बिनी", जनवरी १९७०, पृ० १२-१४ ।
३ देखिए : "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", तथा ८ फरवरी १९७०, ३३ तथा २६ ।
४ देखिए : "धर्मयुग", दीपावली-विशेषांक, १९७८, पृ० ६५-६७ ।

इन पत्र-परिचर्चाओं से प्रकट होता है कि पाठकों के पत्रों से लेखक की रचना-दृष्टि को बड़ी प्रेरणा मिलती है। अनेक हिन्दी लेखकों ने अपने आत्मसंस्मरणों में प्रबुद्ध पाठकों के कुछ पत्रों को प्रकाशित भी किया है।[1] पाठक-पाठिकाओं के पत्रों ने कभी-कभी पत्र-संग्रह का रूप भी धारण कर लिया है। कवि 'नीरज' द्वारा सम्पादित 'लिख-लिख भेजत पाती' एक ऐसा ही पत्र-संग्रह है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक आदि अनेक दृष्टियों से पत्रों का बहुत बड़ा महत्व है। कवि या साहित्यकार जिन उद्गारों को अपनी कविताओं और निबन्धों में व्यक्त नहीं करते या कर पाते, उन्हें वे अपनी चिट्ठियों में अवश्य प्रकट करते हैं। इस प्रकार पत्र एक निर्मल दर्पण है जिसमें लेखक का वास्तविक व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। अंत में हम पत्रों के आत्मोद्घाटक रूप का महत्व प्रदर्शित करते हुए आचार्य शिवकिशोरीदास वाजपेयी के शब्दों में यही कहेंगे :-

'अति दुरूह विस्तृत जीवन जो,
ग्रंथों में है नहीं समाता ;
वही किसीके एक पत्र में
ज्यों का त्यों पूरा बंध जाता।'[2]

---

१ देखिए : (क) 'आत्मनेपद' (१९६०), अज्ञेय, 'अंशदान', पृ० २०९।
(ख) 'ज्यादा अपनी कम परायी' (१९५९), उपेन्द्रनाथ अश्क, 'पत्र', पृ० १७५।
(ग) 'क्या भूलूं क्या याद करूं?' (१९७२) बच्चन, परिशिष्ट।

२ 'साहित्यिकों के पत्र' (१९५८), 'प्रासंगिक निवेदन'।

पत्र का व्युत्पत्यर्थ एवं अभिधेयार्थ :

" पत्र " संस्कृत भाषा का शब्द है । यह " पत् " धातु में " ष्ट्रन " प्रत्यय जोड़ने से व्युत्पन्न हुआ है । " पत् " धातु का अर्थ गिरना, गिर पड़ना, नीचे आना, उतरना आदि है ।[1] इस प्रकार " पत्र " शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर इसका अर्थ होगा-जो गिरता है, नीचे आता है वह अर्थात् वृक्ष का पत्ता ।[2]

पक्षियों के पंख भी एक निश्चित समय पर गिरते हैं । अत: उन्हें भी " पत्र " कहा जाता है । पक्षियों के पंख से ही बाण में लगे पंख के अर्थ में "पत्र" शब्द का प्रयोग मिलता है । अंग "पंख" ने अंगी "पक्षी" का स्थान ग्रहण किया और वाहन के अर्थ में भी पत्र शब्द व्यवहृत हो गया ।[3] वृक्षों के पत्तों और पक्षियों के पंखों में आकार सादृश्य भी है । दोनों पतले, लगभग एक रूपरेखावाले और कटावदार किनारों के भी हैं । सम्भवत: इसी कारण प्राचीन समय के लेखन-कार्य में इनका उपयोग साधन

---

१ " संस्कृत-हिन्दी कोश " (१९७३) ,
वामन शिवराम आप्टे, पृ० ५६६-६७ ।

२ (क) " शब्दकल्पद्रुम:, " तृतीयो भाग:,
राधाकान्तदेव, पृ० २६ ।
" पत्र = क्ली० पतति वृक्षात् ।
पत् लृ गतौ + सर्वधातुभ्य: ष्ट्रन उणं ४।१५८, इति ष्ट्रन ।
वृक्षावयवविशेष: । "

(ख) " संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ " (१९६७),
संपा० द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा पं० तारिणीश झा० पृ०६५२ ।
" पत्र = (न०) । । पत् + ष्ट्रन । वृक्ष का पत्ता "

३ " पत्र " शब्द का विकास " (लेख), शिवनन्दन कपूर ,
"माध्यम", अक्टूबर १९६६, पृ० ५० ।

या द्रव्य के रूप में किया जाता था । प्राचीनकाल में प्रेस अथवा मुद्रणालय नहीं थे । उस समय हमारे ऋषि-मुनि अपने विचार ताल-पत्रों, भोज-पत्रों आदि पर लिखते थे । अत: पत्र शब्द का प्रयोग "लेखनाधार द्रव्य" के अर्थ में होने लगा । कागज़ का आविष्कार होने के पहले सन्देश, समाचार आदि वृक्षों के पत्तों पर ही लिखकर भेजे जाते थे । इसी साहचर्य और अभ्यासवश लेखयुक्त कागज, ताम्रपट आदि को भी लोग "पत्र" कहने लगे ।[1] कागज भी पत्तियों से ही बनता था, इसीलिए वह भी "पत्र" कहलाया । हिन्दी का "पन्ना" शब्द भी संस्कृत के पर्णक से विकसित है । यथा- सं० पर्णक > प्रा० पण्णअ > पण्णा > पन्ना ।[2] आज भी बोलचाल में "कागज-पत्र" या "कागजपत्तर" शब्द संयुक्त और यौगिकरूप में व्यवहृत होता है । इस प्रकार "पत्र" शब्द के अर्थ-विकास की कहानी बड़ी रोचक और रम्य है ।

पं० जगन्नाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित "मेदिनीकोश" में "पत्र" शब्द के वाहन, पत्ता, पक्षी का पंख और बाण का पंख - ये चार अर्थ दिये गये हैं ।[3] तर्कवाचस्पति श्री तारानाथ भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित "शब्दस्तोममहानिधि" शीर्षक कोश-ग्रंथ में "पत्र" के उपर्युक्त चार अर्थों

---

१ देखिए:

(क) "मानक हिन्दी कोश", तृतीय खण्ड (१९६४)
संपा० रामचन्द्र वर्मा, पृ० ३८० । (विशेष टिप्पणी)

(ख) "हिन्दी शब्द सागर," छठा भाग (१९६९),
संपा० श्यामसुंदरदास और अन्य, पृ० २७६७ । (विशेष टि०)

२ डा० अम्बाप्रसाद "सुमन" के एक व्यक्तिगत पत्र से ।

३ "मेदिनीकोश" (वि० सं० २०२४), संपा० पं० जगन्नाथ शास्त्री, पृ० १२६ ।

"पत्रं तु वाहने पर्णे स्यात् पक्षे शरपक्षिणोः ।"

के अतिरिक्त लेखनाधारे द्रव्य और धातुमयपत्राकारे द्रव्य का भी उल्लेख मिलता है।[1] "पत्र" के पर्यायों की विस्तृत सूची हमें श्री जयशंकर जोशी द्वारा सम्पादित "हलायुधकोश" में उपलब्ध होती है।[2] यद्यपि संस्कृत के इन प्रसिद्ध कोश-ग्रंथों में "पत्र" शब्द की व्युत्पत्ति, उसके विभिन्न अर्थों और पर्यायों की चर्चा तो मिलती है, किन्तु इसकी सर्वाधिक सुन्दर और सारगर्भित व्याख्या श्री नगेन्द्रनाथ बसु द्वारा सम्पादित "हिन्दी विश्व-कोश" में दी गयी है। इसमें हमें "पत्र" शब्द की दो व्युत्पत्तियाँ मिलती हैं[3] :-

> (१) "पत्यते पात्यते शास्त्रबोधाय वर्णनिचयोऽनेन, पत करणे ष्ट्रन। लिखनाधार, धातुमय पत्राकृति द्रव्य।"
>
> (२) "पात्ये स्थानात् स्थानान्तरं समाचारोऽनेन। पत्री, चिट्ठी। पत्र द्वारा सम्वाद एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजा जाता है।"

इनमें से दूसरी व्युत्पत्ति का अर्थ रूढ़ वाङ्मय प्रकार की दृष्टि से हमारे लिए अधिक उपयोगी है। इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि "पत्र" हिन्दी का तत्सम शब्द है।

---

१ "शब्दस्तोममहानिधि" (१९६७), पृ० २५८।

"पत्र = न० पत् + ष्ट्रन। वाहनमात्रे, पर्णे, पक्षिणां पक्षे, लेखनाधारे द्रव्ये, धातुमय-पत्राकारे द्रव्ये च। लिप्यां स्त्री० ङीप्।"

२ देखिए : "हलायुधकोश" (शक- १८७९), पृ० ४०८।

३ "हिन्दी विश्वकोश," द्वादश भाग, पृ० ६८१।

संस्कृत में इसका अनेक अर्थों में अतिप्राचीन प्रयोग मिलता है । "ऋग्वेद" के सातवें मण्डल में "शतपत्र" शब्द का प्रयोग किया गया है - "स हि - शुचि: शतपत्र स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशी रिशिर: स्वधा: ।"[1] यहां "शतपत्र" से तात्पर्य बृहस्पति के अनेक वाहनों से है अर्थात् "पत्र" शब्द यहां "वाहन" के अर्थ में व्यवहृत है । "श्रीमद्भगवद्गीता" के नवें अध्याय के छब्बीसवें श्लोक- "पत्रंपुष्पंफलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति"[2] में, महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में राजा दुष्यन्त के कथन "यत् प्रत्यवेक्षितं पौरं कार्यं मार्येण तत् पत्रमारोप्य दीयताम्"[3] में तथा पण्डितराज जगन्नाथ कृत "भामिनीविलास" के प्रथमविलास के सतानबें श्लोक -"धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनाम्"[4] में "पत्र" शब्द का प्रयोग "पत्ता" (वृक्षावयव विशेष) के अर्थ में किया गया है । "पंचतंत्र" के "मित्रभेद" में कहा गया है कि विवाद में लिखापढ़ी या कागज़-पत्र का प्रमाण देखा जाता है । यदि कागज़-पत्र नहीं हो तो साक्षियों को प्रमाण माना जाता है : "विवादेऽन्विष्यते पत्रं तदभावेऽपि साक्षिण: ।"[5] इस प्रकार यहां "पत्र" शब्द "दस्तावेज़" के अर्थ में

---

१ "ऋग्वद", (७-९७-७), सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित टीका, संपा० वेदमूर्ति तपोनिष्ठ, पृ० १०९५ ।

२ "श्रीमद्भगवद्गीता," (९-२६) अंग्रेजी अनुवाद, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ० २०२ ।

३ "अभिज्ञान शाकुन्तलम्," (अंक ६) हिन्दी व्याख्याकार रामतेज पाण्डेय पृ० ४१७ ।

४ "भामिनीविलास," (१-९७), हिन्दी व्याख्याकार राधेश्याम मिश्र, पृ० ११४ ।

५ "पंचतंत्र," (१-४३६), संस्कृत टीकाकार गुरुप्रसाद शास्त्री, पृ० ३७८ ।

प्रयुक्त हुआ है । आधुनिक अर्थ में "पत्र" शब्द का कदाचित् सबसे प्रथम प्रयोग कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" में मिलता है । इस ग्रंथ के "राजप्रविधि" शीर्षक प्रकरण में कहा गया है कि राजा को पांचवें प्रहर में मंत्रिपरिषद के साथ पत्र द्वारा मंत्रणा करना चाहिए : "पंचमे मन्त्रिपरिषदा पत्र-सम्प्रेषणेन मंत्रयेत ।"[१] इन उद्धरणों में प्रयुक्त "पत्र" शब्द से उसके तत्कालीन स्वरूप का स्वयं स्पष्टीकरण हो जाता है ।

प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि हिन्दी में जिस अर्थ में हम आज "पत्र" शब्द का प्रयोग करते हैं, उस अर्थ को द्योतित करने के लिए उसमें "लेख" शब्द का प्रयोग किया गया है ।[२] यद्यपि महाकवि बाण, भवभूति आदि संस्कृत साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में कहीं-कहीं लिखित सन्देश के लिए "पत्रिका" और "पत्र" शब्द का प्रयोग भी किया है, किन्तु अधिकांश प्राचीन ग्रंथों में "पत्र" के स्थान पर "लेख" शब्द का प्रयोग ही किया गया है । अत: यहां पत्र और लेख के सम्बन्ध पर किंचित् प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है ।

---

१ "कौटिलीय अर्थशास्त्रम्" (प्रकरण-१६),
अंग्रेजी अनुवादक एवं सम्पादक शामा शास्त्री, पृ० ३८ ।

२ देखिए :

(क) "हला ! मदनलेखोऽस्य क्रियताम् ।"
-"अभिज्ञान शाकुन्तलम्" (अंक-३),
व्याख्याकार रामतेज पाण्डेय, पृ० १७६ ।

(ख) "एष खलु स्वामिना माननीयस्य लेख: प्रहति ।"
-"हर्षचरितम्" (उल्लास-२),
व्याख्याकार जगन्नाथ पाठक, पृ० ६० ।

(ग) "लेखोऽयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यत:"
-"मुद्राराक्षसम्" (अंक-५),
टीकाकार डा० रामशंकर त्रिपाठी,
पृ० २६४ ।

पं० गणेशदत्त शास्त्रीकृत "पद्मचन्द्रकोश"[1] में "लेख" शब्द का जिस प्रकार अर्थ-विश्लेषण किया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि "लेख" आधेय और "पत्र" आधार का बोधक है। प्राचीन काल में "पत्र" के स्थान पर "लेख" शब्द का प्रयोग सम्भवत: इसलिए किया गया होगा कि बहुत पहले खोदकर ही लिखा जाता था। लिखने का अर्थ ही उत्कीर्ण करना होता था।[2] "लिपि" शब्द का लिखावट के लिए प्रयोग भी पत्रों पर स्याही के लेपन से ही प्रचलित हुआ है।[3]

प्राचीन समय में पत्र-लेखन का कार्य कुशल लेखकों द्वारा ही सम्पन्न होता था। राजकीय पत्र और दस्तावेज़, लेखन-कला में निपुण और नाना भाषाविद् लेखक ही तैयार करते थे। कदाचित् इसीलिए भी "लेख" शब्द का प्रयोग किया गया हो। श्री पी० के० गोडे तथा सी०जी० कार्वे द्वारा सम्पादित "संस्कृत-अंग्रेजी कोश"[4] में "लेख" शब्द के जो अर्थ दिये गये हैं, उनमें "दस्तावेज़" का उल्लेख भी किया गया है। सारांश यह कि प्रारम्भिक काल में "पत्र" शब्द का प्रयोग प्राय: लेखनाधार द्रव्य अथवा बाह्य स्थूलाकार के

---

१ "पद्मचन्द्रकोश" (१८९८), पृ० ३३० ।
"लेख =(पु०)लिख्यते चित्रादि पटेऽसौ । लिख् + कर्मणि घञ् ।
जो मूर्ति लिखनेवाले कपड़े आदि पर लिखा जाता है। देवता ।
"भावे घञ् लेखन । कर्मणि घञ् लेख्य (लिखने लायक)
आधारे घञ्-र् पत्र, लिपि ।"

२ "देखिए:-(क)" संस्कृत-हिन्दीकोश"(१९७३),
वामन शिवराम आप्टे, पृ० ८७७ ।
(ख)"प्राचीन पत्र-लेखन"(लेख), डा० हीरानन्द शास्त्री,
"विशाल भारत," जनवरी १९३८, पृ० ५८ ।

३ "प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद"(१९५२),
आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ७० ।

४ "Sanskrit-English Dictionary", Part-III, P. 1370.
"लेख (लिख्-भावे घञ्) A writing,
Document, written document(of any kind), a letter"

अर्थ में ही किया गया होगा । कालान्तर में वह बाह्य स्थूलाकार और आभ्यान्तर वस्तु दोनों का बोधक बन गया होगा । आज "पत्र" शब्द से आधार और आधेय दोनों ही अर्थ द्योतित होते हैं । अत: "लेख" शब्द के अर्थ का समावेश "पत्र" शब्द के अभिधेयार्थ में स्वयमेव हो जाता है ।

पुराने शब्दों को नये अर्थ में प्रयुक्त करने की पद्धति को "पारस्परिक पद्धति" कहा जाता है । अंग्रेजी में ऐसे शब्दों को थ्रू बैक्स - (Through Backs) कहते हैं ।[1] "पत्र" शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ के विकास में इस पद्धति का भी उल्लेख्य योग रहा है । "पत्र" को लेकर बनाये यौगिक शब्द "पत्रभंग", "पत्रलता", "पत्रद्रुम", "पत्रपाल", "दान-पत्र", "प्रमाण-पत्र" आदि "एक लाख पूत सवा लाख नाती" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं ।

हिन्दी में आज "पत्र" शब्द का प्रयोग स्वजन-परिजनों, इष्ट-मित्रों आदि को डाक द्वारा भेजे जानेवाले पत्रों और दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक आदि पत्रों के लिए अधिक होता । "अखबारों- मैगज़ीनों के साथ "पत्र" शब्द जोड़ देने का कारण सम्भवत: यह होगा कि "पत्र" अर्थात् लेटर किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का माध्यम है ।"[2] इसी अर्थ-साम्य के कारण ही कदाचित् "पत्र-साहित्य" शब्द का प्रयोग पत्रकारिता के सन्दर्भ में किया जाता है । हिन्दी में डाक द्वारा भेजे जानेवाले "पत्र" के लिए सामान्यत: "चिट्ठी" शब्द का प्रयोग होता है । ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि विभाषाओं में "पत्र" के लिए "पाती" और "पतिया" शब्द अधिक प्रचलित हैं । कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी, पद्माकर आदि प्राचीन कवियों ने अपने काव्य में "पत्र" के स्थान पर इन्हीं शब्द रूपों का प्रयोग किया है । अत: इन शब्द-रूपों के अर्थ-विकास की संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक न होगी ।

---

१ "छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप" (१९७२) डा० सुधा गुप्ता, पृ० २३ ।

२ "हिन्दी साहित्य कोश" भाग-१, (वि०सं० २०२०), संपा० डा० धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, पृ० ४७१ ।

प्राचीनकाल में चिह्न-लिपि, चित्र-लिपि, रेखा-लिपि आदि लिपियां थी, अर्थात् भाव-विचार-सूचक चिह्न मात्र थे । आदिकाल के मानवों को अपने विचारों को दूसरों के पास पहुंचाने के लिए उन चिह्नों को किसी वस्तु पर चिह्नित करने में बड़ी चेष्टा (प्रयास-परिश्रम) करनी पड़ती थी । वह प्रयास "चेष्टित" होता था अर्थात् चेष्टित प्रयास से वह सूचना या समाचार दूसरे तक पहुंचाया जाता था । इसलिए उसे "चिट्ठी" कहने लगे । संस्कृत का चेष्टित शब्द प्राकृत में चिट्ठिय होता है । इस प्रकार "चिट्ठी" शब्द का विकास-क्रम होगा - सं० चेष्टित > प्रा० चिट्ठिय > चिट्ठिइ > चिट्ठी ।[1] पाती और पतिया शब्दों का उद्भव क्रमशः पत्री और पत्रिका से हुआ है । हिन्दी की जनपदीय बोलियों और अन्य भारतीय भाषाओं में "पत्र" के लिए चिट्ठी, पाती आदि शब्द अधिक व्यवहृत होते हैं ।

भारत में प्रचलित प्रमुख सोलह भाषाओं में "पत्र" के लिए कौन-कौन-से शब्द व्यवहृत होते हैं, इसकी अच्छी जानकारी हमें श्री विश्वनाथ नरवणे द्वारा सम्पादित भारतीय व्यवहार कोश[2] में मिलती है ।

---

१ डा० अम्बाप्रसाद "सुमन" के एक व्यक्तिगत पत्र के आधार पर ।
२ "भारतीय व्यवहार कोश" (१९६१), पृ० ४२ ।

क्रम	भाषा	पत्र के लिए व्यवहृत शब्द	क्रम	भाषा	पत्र के लिए व्यवहृत शब्द
१	हिन्दी	पत्र, चिट्ठी, खत	९	बंगला	चिठि
२	अंग्रेजी	लेटर (Letter)	१०	असमीया	चिठि (सिठि)
३	पंजाबी	ख़त (खत्)	११	ओड़िया	चिठि
४	उर्दू	ख़त (खत्)	१२	तेलुगु	ज़ाबु, उत्तरमु
५	काश्मीरी	खत्, चिटप्	१३	तमिल	कडिदम
६	सिंधी	ख़तु (ख़त्तु)	१४	कन्नड़	ओले, पत्र
७	मराठी	पत्र	१५	मलयालम	ए ळु तॅु
८	गुजराती	कागळ	१६	संस्कृत	लेख, पत्र ।

इस कोश-ग्रंथ को देखने से ज्ञात होता है कि भारतीय व्यवहार में "पत्र" शब्द के अतिरिक्त "चिट्ठी" और " खत" - ये दो शब्द अधिक प्रचलित हैं।

अंग्रेजी में "पत्र" के लिए "लैटर " शब्द का प्रयोग किया जाता है । अंग्रेजी का "लैटर " शब्द लैटिन की "लिट्टा" (Littera) धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है - वर्णमाला का अक्षर, लिखना आदि[1] इस प्रकार अंग्रेजी का "लैटर " शब्द भी संस्कृत के " लेख " शब्द के समान "आधेय " का बोधक है । लैटिन की "लिट्टा " धातु और संस्कृत की "लिख " धातु में पर्याप्त साम्य दिखाई देता है । वैब्स्टर के कोश-ग्रंथ में "लेटर " शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए पत्र-लेखन की जिसे प्राचीन विधि का उल्लेख किया गया है, वह हमारे ताल-पत्रों की लेखन-विधि से बहुत मिलती-जुलती है ।[2] इस प्रकार "पत्र " के व्युत्पत्यर्थ के अधिक निकट अंग्रेजी का "पेपर " शब्द ठहरता है, किन्तु अभिधेयार्थ की दृष्टि से लेटर " को ही उसका पर्याय समझा जाता है । "लैटर " के अतिरिक्त अंग्रेजी में " पत्र "के लिए " एपिस्टल " (Epistle) शब्द का

I." Smaller Latin-English Dictionary " (1952),
By Sir William Smith, P.405.

" Littera = (old Lation litera, lettre)
a letter of alphabet, to write....."

2." Webster's New International Dictionary of English Language,"
2nd Edition, P. 1419.

" ..... one of the earliest modes of writing was by graving the characters upon tablets smeared over or cover with wax.

प्रयोग भी मिलता है । अत: यहाँ "पत्र" के अर्थ-विश्लेषण के सन्दर्भ में लैटर-एपिस्टल के अंतर को समझ लेना भी आवश्यक है ।

अंग्रेजी में "एपिस्टल" ऐसे पत्र का पर्याय है जो किसी अनुपस्थित व्यक्ति को लिखा जाता है । इस शब्द का प्रयोग विशेषरूप से उन पत्रों के लिए किया गया था जो प्राचीनकाल में साहित्य के रूप में लिखे गये ।[1] इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के "एपिस्टोल" शब्द से हुई है जिसका अर्थ है पत्र, विशेषत: ऐसा पत्र जो ईश्वर और धर्म से सम्बन्धित हो और साहित्य की कोटि में आ सकता हो ।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि एपिस्टल भी एक प्रकार का "लैटर" अर्थात् पत्र ही है । लैटर और एपिस्टल का अंतर मुख्यत: इनके प्रयोग में ही है । एपिस्टल में औपचारिकता

I." Shorter Oxford Dictionary,"
Third Edition, P. 624.

"Epistle- A communication made toan absent person in writing a letter, chiefly applied to those letters - written in ancient times which rank as literature".

2"(a) Current Literary Terms" , (1952),
by - "A.F. Scott, P.95.

" Epistle-Greek

epistolē. A letter, especially one from an apostle, forming part of the canon of scripture and ranking as literature."

(b) Bhargava's Standars Illustrated Dictionary.
(Anglo-Hindi) P.276.

" Epistle = a letter sent to person, a literary work."

अपेक्षाकृत अधिक होती है । दूसरे शब्दों में औपचारिक रूप में लिखे गये पत्रों के लिए ही "एपिस्टल" शब्द का प्रयोग किया जाता है । इसका सबसे अधिक प्रचलित प्रयोग बाईबिल-सम्बन्धी लिखे गये विशेष प्रकार के निबन्धों के लिए किया गया है ।[1] प्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक हेनरी हडसन इसका समावेश गीतिकाव्य के अन्तर्गत करते हैं ।[2] सारांश यह कि "एपिस्टल" एक प्रकार का पत्र ही है । यह गद्य और पद्य दोनों में लिखा जा सकता है । परन्तु इसकी रचना सार्वजनिन वक्तृता के रूपमें होती है, इसलिए इसमें "लैटर" अर्थात् पत्र के समान वैयक्तिकता नहीं होती ।

प्राचीन योरप में "एपिस्टल" लिखने की एक प्रथा थी । काव्य में इस शब्द का प्रयोग "होरेस" की उन रचनाओं के लिए किया गया जो नीतिसम्बन्धी एवं दार्शनिक विषयों पर, लगभग निबन्धों के रूप में लिखी गयी थीं । आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए

I.(a)" Dictionaty of Literary Terms," By J.R. Harmsworth, P.4o .

"Theoretically an Epistle is any letter, but in practice the term is limited to formal compositions written by an individual or a group to a distant individual or group. The most familiar use of the term, is to characterize Certain of the book of the New Testament "

(b)" Encyclopedia Britannia," Vol.8,(1968), P. 651.

"Epistle = In its original sense a word meaning simply a letter, has come to be used only of formal letters in ancient time. . . . . "

2. "In Introduction to the Study of Literature, 5th Indian Edition, 1973, P. 102.

लिखा है कि "-- - - - यह शब्द विशेषतः उन पत्रों के लिए प्रयुक्त होता है जो गद्य या पद्य में अत्यन्त सावधानी या कला से लिखे जाते हैं। पुनर्जागरणकाल में ग्रंथों की भूमिकाएं पत्र के रूप में लिखी जाती थीं, इसलिए कुछ दिनों तक पत्र का अर्थ ही भूमिका हो गया, यहांतक कि जो भूमिकाएं पत्र के रूप में नहीं भी लिखी जाती थीं, उन्हें भी "एपिस्टल" कहा जाने लगा था।"[1] इस प्रकार प्राचीनकाल में साहित्य के रूप में लिखे गये पत्रों को "एपिस्टल्स" कहा जाता था।

हिन्दी में "एपिस्टल" के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित "मानविकी पारिभाषिक कोश" में इसे "काव्य-पत्र" कहा गया है।[2] डा० उमाकान्त ने राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त की "पत्रावली" की समीक्षा के प्रसंग में इसको "साहित्यिक पत्र" की संज्ञा दी है,[3] तो डा० कामिल बुल्के ने अपने अंग्रेजी-हिन्दीकोश में इसके लिए "धर्मपत्र," "पत्रकविता" आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं। इससे प्रकट होता है कि हिन्दी में "एपिस्टल" के लिए कोई निश्चित शब्द नहीं है।

उपर्युक्त विश्लेषण-विवेचन से स्पष्ट होता है कि "पत्र" शब्द अपने आधुनिक अर्थ में बाह्य स्थूलाकार और आभ्यान्तर वस्तु दोनों का बोधक है। अंग्रेजी में इसके लिए "एपिस्टल" शब्द का प्रयोग भी मिलता है, किन्तु वह प्राचीनकाल में साहित्य के रूप में लिखे गये पत्रों का बोधक है। अतः हिन्दी में आज "पत्र" शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के "लेटर" के पर्याय के रूप में होता है।

---

१ "साहित्यानुशासनम्" (वि० सं० २०२६), पृ० १००२।

२ "मानविकी पारिभाषिक कोश" (१९६५), पृ० १०८।

३ "गुप्त जी की काव्य-साधना" (१९६६), पृ० २२८।

४ "An English-Hindi Dictionary" (1968), P. 215.

पत्र की विविध परिभाषाएं

पत्र-लेखन भी साहित्य की एक सशक्त एवं स्पृहणीय कला है। विश्व में अनेक महान् पत्र-लेखक हुए हैं, जिनके पत्र उनके साहित्य से कम रोचक या महत्वपूर्ण नहीं हैं। पत्रों को साहित्य का अंग मानने की प्रेरणा हमें पाश्चात्य साहित्य से मिली है। पत्र-लेखन कला पर पाश्चात्य साहित्य में विस्तार से विचार किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों ने भी पाश्चात्य व्याख्याकारों तथा विद्वानों का अनुगमन किया है। अत: यहां हम पहले पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी पत्र की परिभाषाओं पर विचार करेंगे। तदनन्तर हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का विवेचन होगा।

१ - पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएं :

शिप्ले के विश्व-वाङ्मय कोश में पाश्चात्य पत्र-लेखनकला की विस्तार से व्याख्या की गयी है। इसमें कहा गया है कि पत्र प्राय: भेजनेवाले की ओर से पानेवाले के लिए प्रथम पुरुष में प्रत्यक्ष सम्बोधन होता है। पहले जमाने में दूत या पत्र-वाहक द्वारा चिट्ठियां भेजी जाती थीं और ऐसा भी होता था कि पत्र-वाहक न केवल चिट्ठियों को पहुंचाता था, वरन् उनको पढ़कर सुनाता भी था। उस समय के पत्रों में पानेवाले को तृतीय पुरुष द्वारा सम्बोधित किया जाता था।[१] इस प्रकार इस परिभाषा में प्राचीन और अर्वाचीन पत्र-लेखन-प्रणालियों का संकेत किया गया है।

---

1 " Dictionary of World Literature," by J.T. Shipley, P. 249.

" The letter is usually a direct address from the sender in the 1st person to the receiver be made by a messenger who in fact or by conventional pretense recites or read the message, the voice of letter may be that an intermediary, uning the 3rd person to refer to sender and receiver; or the direct address of the letter proper may..... "

"इल्लस्ट्रेटेड वर्ल्ड इनसाइक्लोपीडिया" के अनुसार पत्र किसी के पास भेजा गया लिखित सन्देश है । यह शब्द सामान्यत: कुछ लम्बाईवाले और लिफाफे में डाक द्वारा भेजे जाने वाले सन्देश के लिए प्रयुक्त होता है । संक्षिप्त सन्देश को बहुधा नोट कहा जाता है ।[1] इस परिभाषा में पत्र की लम्बाई पर बल दिया गया है । इसके अनुसार पोस्ट-कार्ड पर लिखा गया सन्देश संक्षिप्तता के कारण नोट बन जायेगा । इस प्रकार यह परिभाषा यह धारणा प्रस्तुत करती है कि पत्र नोट का बृहत्रूप है और नोट पत्र का लघु रूप अर्थात् पत्र और नोट में आकार का अंतर है । परन्तु हमारे विचार में सन्देश संक्षिप्त है या बड़ा, यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि वह किस विषय से सम्बन्धित है और किसने किसको लिख भेजा है ।

श्री हर्मस्वोर्थ महोदय पत्र को मित्रों के बीच वैयक्तिक एवं स्वाभाविक सम्बन्ध का प्रतिनिधि मानते हैं ।[2] इस परिभाषा में मैत्री-भावना पर जोर दिया गया है । पत्र-लेखन का मुख्य उद्देश्य मैत्री-भावना का विस्तार करना है ।

श्री एडगर जानसन के मतानुसार पत्र जनता के प्रयोग के लिए नहीं होते । यह एक ही व्यक्ति को लिखे जाते हैं पर लिखे छोटे-छोटे समूहों में जाते हैं । यह भावग्राहक अर्थात् पानेवाले व्यक्ति के स्वाद, समझ और सहानुभूति के अनुसार लिखे जाने चाहिए ।[3] इस परिभाषा में भावग्राहक अर्थात् पत्र पानेवाले के व्यक्तित्व पर बल दिया गया है । इससे प्रकट होता है कि पत्र, लेखक के साथ भावग्राहक के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालते हैं ।

1"Illustrated World Encyclopedia," Part-13, P. 3089 .

"Aletter is a written message sent to some one else. The word is used mostly for a message of some length, put in an envelope and mailed. A shorter message is often called a note "

2"Dictionary of Literary terms", by J.R. Harmsworth, P. 64.

"Letters represent personal and natural relationship between friends".

3." One Maighty Torrent, P. 157.

"A letter is not a public performance. Letters are written to single persons. or, at most, to small group, they should be fitted to the tastes, under standing and sympathies of their recipents "

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त परिभाषाओं में विद्वानों ने अपना मंतव्य समझाने के लिए पत्र की अलग-अलग विशेषताओं या उसके लक्षणों पर बल दिया है । अत: प्रत्येक परिभाषा में पत्र के कुछ-न-कुछ तत्व संनिविष्ट होने से छूट गये हैं । अब हम हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अवलोकन करेंगे ।

२ - हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएं :

हिन्दी में पत्रों को साहित्य के रूप में मान्यता एवं स्वीकृति प्रदान करने का श्रेय बाबू गुलाबराय को है । उन्होंने ही सबसे पहले अपने "काव्य के रूप" शीर्षक समालोचना-ग्रंथ में काव्य के विभिन्न रूपों का विभाजन करते हुए उपन्यास, कहानी, जीवनी, निबन्ध आदि गद्य-रूपों में पत्र को भी स्थान दिया है ।[1] यही नहीं, उक्त ग्रंथ के "श्रव्य-काव्य-अन्य विधाएं" शीर्षक प्रकरण में उन्हों ने "पत्र-साहित्य" का शास्त्रीय निरूपण भी किया है । पत्रों के सर्वाधिक महत्व को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लिखा है :-

"पत्र व्यक्ति द्वारा लिखे जाते हैं और वे व्यक्ति के लिए ही होते हैं किन्तु वे जनसाधारण के लाभ या मनोरंजन की भी वस्तु हो सकते हैं । उनमें साहित्य की सब विधाओं की अपेक्षा व्यक्तित्व की झलक अधिक रहती है ।"[2]

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि पत्र व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित होते हुए भी लेखक के गरिमामय एवं कलात्मक व्यक्तित्व के कारण सब के लिए पठनीय बन सकते हैं । यही तथ्य प्रकारान्तर से श्री राजेन्द्र द्विवेदी की निम्नलिखित परिभाषा में अंकित है -

"पत्र=प्रकाशन के लिए अनभिप्रेत व्यक्तिगत रूप का साहित्य । कभी-कभी सार्वजनिक उपयोग का होने के कारण प्रसिद्ध व्यक्तियों का पत्र-व्यवहार प्रकाशित भी हो जाता है । लेखक के प्रतिष्ठित होने पर वह समकालीन घटनाओं आदि की आलोचना करता है और अपने अनुभव

---

१ " देखिए: " काव्य के रूप " (तृ० सं० १९५४), पृ० २२ ।

२ - वही -, पृ० २६० ।

के सहारे प्रौढ़ टिप्पणियां देता है और इस प्रकार अनजाने ही अपने चरित्र और दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देता है । पत्रात्मक कहानियां या पत्र-गीतियां भी लिखी जाती हैं ।"[1] इस परिभाषा में लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व के उद्घाटन के साथ समकालीन घटनाओं की विवृत्ति का भी उल्लेख किया गया है ।

"हिन्दी साहित्य कोश" में पत्र की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है -

"जब व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास कोई प्रत्यक्ष सन्देश भेजे तो उसे पत्र कहेंगे । आधुनिक पत्र सामान्यत: लिखित होता है, बातचीत की शैली में लिखा जाता है और डाक द्वारा भेजा जाता है । प्राचीनकाल में पत्र किसी मध्यस्थ के हाथों भेजे जाते थे और यह मध्यस्थ, सन्देशवाहक, पत्र-वाहक, दूत या कासिद-सन्देश पानेवाले को सन्देश पढ़कर सुनाता था ।"[2]

इस परिभाषा में भी शिप्ले के विश्व वाङ्मय कोश की तरह पत्र के प्राचीन और अर्वाचीन स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है । बातचीत की शैली आधुनिक पत्र की उल्लेखनीय विशेषता है ।

डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित "मानविकी पारिभाषिक कोश" में दी गयी परिभाषा में भी पत्र-लेखन की आधुनिक और प्राचीन पद्धतियों की व्याख्या की गयी है । देखिए-

"पत्र प्राय: एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्रेषित अभिलेख होता है जिसमें प्रेषक अपने को प्रथम पुरुष में तथा आप्रेषक को द्वितीय पुरुष में सम्बोधित करता है । किन्तु पहले जब पत्र दूत द्वारा भेजा जाता था और दूत ही पत्र पढ़कर सुनाने का कार्य भी करता था तो आप्रेषक को तृतीय पुरुष द्वारा सम्बोधित किया जाता था ।"[3]

---

१ "साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द-कोश" (१९५५), पृ० १३८ ।

२ "हिन्दी साहित्य कोश," भाग-१ (सं० २०२० वि०), संपा० डा० धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, पृ० ४७० ।

३ "मानविकी पारिभाषिक कोश," साहित्य-खण्ड, (१९६५), पृ० १५८ ।

यह परिभाषा एक दृष्टि से पूर्वोल्लिखित शिष्टेकृत विश्व-वाङ्मय कोश की परिभाषा का हिन्दी रूपान्तर ही है ।

श्री धर्मचन्द सन्त तथा बलदेव कृष्ण द्वारा लिखित "सिद्धांतालोचन" शीर्षक पुस्तक में पत्र की परिभाषा इन शब्दों में दी गयी है -

"पत्र वह लेख है जो किसी दूर रहनेवाले व्यक्ति-विशेष को प्रेषित किया जाता है और जिसमें दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावना का प्रकाशन रहता है ।"[1]

यह परिभाषा भी हमारे सम्मुख पत्र की कोई महत्वपूर्ण विशेषता नहीं प्रकट करती ।

डा० शांति खन्ना ने अपने "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य"[2] शीर्षक शोध-प्रबन्ध में पत्र की परिभाषा देते हुए लिखा है:-

"पत्र वह लेख है जो दूर रहनेवाले व्यक्ति-विशेष को प्रेषित किया जाता है और जिसमें दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावनाओं का उसकी रूचि, समझ एवं योग्यता के अनुसार कलात्मक ढंग से प्रकाशन किया जाता है ।"

यह परिभाषा "सिद्धान्तालोचन" के उपर्युक्त लेखक-द्वय तथा पाश्चात्य समीक्षक एडगर जानसन द्वारा दी गयी परिभाषाओं का मिश्रित रूप है । अत: इसमें कोई नया तथ्य हमें देखने को नहीं मिलता ।

३ - निष्कर्ष :

इस प्रकार पाश्चात्य और हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को देखने से पता चलता है कि सभी परिभाषाएं व्यापक होते हुए भी किसी-न-किसी दृष्टि से अपूर्ण हैं । हिन्दी विद्वानों में बाबू गुलाबराय और राजेन्द्र द्विवेदी को छोड़कर शेष प्राय: सभी विद्वानों ने अपनी परिभाषाओं में पाश्चात्य विद्वानों की विचार-सरणी का ही अनुगमन किया है । यदि उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में संकेतित पत्र की

---

१ "सिद्धांतालोचन" (प्र० सं०) पृ० २१६ ।

२ "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" (१९७३), पृ० २३६ ।

महत्वपूर्ण विशेषताओं को दृष्टि में रखकर पत्र-विधा को परिभाषा-बद्ध करना चाहें तो कह सकते हैं -

पत्र पारस्परिक मैत्री-भावना तथा वार्तालाप की ध्वनि से युक्त, स्वत: पूर्ण, प्रकाशन के लिए अनभिप्रेत किन्तु सार्वजनिक उपयोगिता के कारण प्रकाशित होनेवाला ऐसा साहित्य-रूप है जिसमें लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व के साथ भावग्राहक के व्यक्तित्व और समकालीन घटनाओं की स्पष्ट झलक मिलती है।

पत्र-विधा की प्रमुख विशेषताएं

उपर्युक्त समन्वित परिभाषा के आधार पर पत्र-विधा के स्वरूप से सम्बन्धित कुछ प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है-

(१) पत्र प्रकाशन के लिए अनभिप्रेत व्यक्तिगत रूप का साहित्य है।

(२) प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेरक एवं मनोरंजक पत्र प्रकाशित भी होते हैं।

(३) पत्रों में लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है।

(४) पत्रों में पारस्परिक मैत्री-भावना या आत्मीयता की झलक मिलती है।

(५) पत्रों में समकालीन घटनाओं की विवृति होती है।

(६) पत्रों में वार्तालाप की ध्वनि विद्यमान रहती है।

(७) पत्र स्वत: पूर्ण होते हैं।

(८) पत्रों में भावग्राहक के व्यक्तित्व की झांकी मिलती है।

अब हम अनुक्रम से प्रत्येक विशेषता की संक्षेप में चर्चा करेंगे।-

१- प्रकाशन के लिए अनभिप्रेतता :

पत्र एक वैयक्तिक विधा है। उत्तम पत्र प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे जाते। पत्र हमारी अपनी चीज़ है। जिसके लिए हम लिखते हैं, उसे छोड़कर दूसरा पढ़ेगा भी नहीं, इस विश्वास के साथ हम दिल खोलकर लिखते हैं। यदि पत्र लिखते समय हमें यह भान हो जाय कि हमारे पत्र

प्रकाशित होंगे तो सम्भवत: उनमें कृत्रिमता आ जायेगी । अपने नाम आये डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों को जब पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित किया तो उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डा०अग्रवाल ने लिखा था : -

" आपने मेरे पत्रों को छपवाकर पत्र लिखने की स्वतंत्रता को जैसे कुण्ठित कर दिया । प्रवाह में बहुत-सी बातें लिख जाता था । सम्भव है वैसा अब न होगा ।"[१]

इस प्रकार वैयक्तिकता पत्र-विधा की प्रथम विशेषता है । अनजाने में लिखे गये पत्रों में जो स्वाभाविकता मिलती है वह प्रकाशन की दृष्टि से लिखे गये पत्रों में नहीं मिलती । डा० लक्ष्मीनारायण दुबे ने आचार्य शिवपूजन सहाय की पत्र-लेखन कला की समीक्षा के आरम्भ में पत्र-विधा की इस विशेषता की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि -"पत्रों में भी उन पत्रों की महिमा और गरिमा सर्वोपरि होती है जो लेखक के द्वारा अनजाने में ही लिखे जाते हैं और इस बात का पता नहीं होता कि भविष्य में कभी आगे-पीछे प्रकाशित भी हो सकते हैं ।"[२]

इस दृष्टि से साहित्यकारों एवं विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों ने अपनी साधनावस्था में जो पत्र लिखे हैं वे सिद्धावस्था में लिखे गये पत्रों की अपेक्षा अधिक रोचक प्रतीत होते हैं । महाकवि "निराला" द्वारा उनके संघर्ष-काल में लिखे गये पत्रों में जो आत्म-संवेदना का रस हमें प्राप्त होता है, वह उनकी सिद्धावस्था में लिखे गये पत्रों में नहीं मिलता । तात्पर्य यह कि उत्तम पत्र प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे जाते । इसी कारण अनौपचारिकरूप में व्यक्तित्व का सहज अभिव्यंजन कर सकने में वे अधिक सफल बन जाते हैं, व्यक्तित्व के आकर्षण एवं सहज अभिव्यंजन के कारण ही प्रकाशित किये जाते हैं और प्रकाशनोत्तर सर्वसुलभ बन जाते हैं ।

१" डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४),संपा० बाबू वृन्दावनदास, पृ० १५३ ।

२" आचार्य शिवजी : पत्र-लेखक के रूप में" (लेख), "साहित्य" (त्रै०), जनवरी १९६४, पृ० २०५ ।

प्रसिद्ध व्यक्तियों के उत्प्रेरक और मनोरंजक पत्रों का प्रकाशन :

साहित्यकारों और महापुरुषों के व्यक्तिगत पत्र उस अर्थ में व्यक्तिगत नहीं होते, जिस अर्थ में सामान्य व्यक्तियों के व्यक्तिगत पत्र होते हैं।[1] ये पत्र बड़े उत्प्रेरक और मनोरंजक होते हैं। इसी कारण वे प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी निधि बन जाते हैं। आचार्य - काका कालेलकरने बजाज-परिवार के नाम लिखे गये महात्मा गांधी के पत्रों को "संत-सम्वाद" की संज्ञा दी है।[2] इसी प्रकार "बापू के पत्र-कुमारी प्रेमाबहन कंटक के नाम" शीर्षक पत्र-संग्रह की भूमिका में उन्होंने लोकोत्तर साधकों के पत्र-पठन को "तीर्थस्नान" जैसा पुण्य कार्य माना है।[3]

साहित्यकारों के वैयक्तिक पत्र तो उनकी श्रेष्ठ कृतियों के समान ही रोचक, उत्प्रेरक और मनोरंजक होते हैं। हिन्दी में पं० पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला," सुमित्रानन्दन पन्त आदि के अनेक पत्र इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कवि मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्र उर्दू-साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। ग़ालिब नहीं चाहते थे कि उनके वैयक्तिक पत्र प्रकाशित हों। मुंशी शिवनारायण के नाम लिखे १८-११-१८५८ के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया था कि -"उर्दू खुतूत जो आप छपवाना चाहते हैं, यह भी ज़ायद बात है। कोई पत्र ऐसा होगा कि मैंने क़लम सम्भालकर और दिल लगाकर लिखा होगा। वरना सिर्फ तहरीर सरसरी है। क्या ज़रूरत है कि हमारे आपस के मुआमलात औरों पर ज़ाहिर हों ?"[4]

परन्तु जिन पत्रों को ग़ालिब औरों के सामने प्रकट करना नहीं चाहते थे, वे ही पत्र प्रकाशित होकर उनकी शाश्वत कीर्ति का कारण बन गये। इस सम्बन्ध में "ग़ालिब: व्यक्तित्व और कृतित्व" शीर्षक

१. श्री मधुरेश से प्राप्त एक व्यक्तिगत पत्र के आधार पर।
२. "बापू के पत्र बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), सम्पादकीय, पृ० ८।
३. "बापू के पत्र कुमारी प्रेमाबहन कंटक के नाम" (१९६१), "तीर्थस्नान," पृ० १२
४. "ग़ालिब के पत्र" (१९७२), संपा० अर्श मलसियानी, भूमिका, पृ० १।
५. [illegible]

पुस्तक के लेखकों का यह कथन उल्लेखनीय है कि -"पत्र-लेखन की वह शैली जिसे उन्होंने केवल सुभीते की दृष्टि से अपनाया था और जिसके प्रकाशन को वे अपनी कीर्ति के लिए हानिकर समझते थे, आज वही उर्दू-साहित्य की ऐसी बहुमूल्य निधि है कि ग़ालिब के एक आलोचक के कथनानुसार यदि ग़ालिब का दीवान न होता, केवल ये पत्र होते तो ये उन्हें संसार में अमर करने के लिए पर्याप्त होते हैं ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि महान् साहित्यकारों के पत्र उनके साहित्य से कम रोचक या महत्वपूर्ण नहीं है । इस लिए विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्रों को वैयक्तिक सम्पत्ति समझकर उन्हें सात ताले में बन्द कर देना उचित नहीं है । उनको प्रकाशित करना चाहिए । प्रकाशित होने पर वे साहित्य और कला के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं । साहित्य और कला का मुख्य उद्देश्य मानव-हित का सम्पादन और मनोरंजन ही है ।[2] प्रसिद्ध व्यक्तियों के उत्प्रेरक और मनोरंजक पत्र प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी निधि बन जाते हैं और समष्टि के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते हैं । श्री परमात्म शरण बंसल ने ठीक ही कहा है -

" पत्र-लेखन साहित्य की एक कला है । यद्यपि साहित्यकार पत्र द्वारा अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों को किसी विशेष व्यक्ति तक ही प्रदर्शित करता है, परन्तु जब पत्र प्रकाशित हो जाते हैं, तो वे साहित्य बनकर समष्टि का कल्याण करते हैं ।"[3]

---

१ " ग़ालिब : व्यक्तित्व और कृतित्व(१९६९), नरनबी अब्बासी और डा० नरूल हसन नकवी, पृ० १४५ ।

२ (क)"साहित्य का अर्थ "हितेन सह सहितं" लगाते हुए हम कहेंगे कि साहित्य वह है जिससे मानव-हित का सम्पादन हो । हित उसे ही कहते हैं जिससे कुछ बने, कुछ लाभ हो-"विदधातीति हितम्-"आनन्द भी एक लाभ है ।" - बाबू गुलाबराय:"काव्य के रूप"(१९५४), पृ० ३ ।

(ख)"कं(सुखम्)लाति इति कलम् ।"कल" और कला" शब्द का सन्निकट्य है"।
- सद्गुरूशरण अवस्थी :"साहित्यतरंग(१९५६), पृ० २ ।

(ग)"कं आनन्दं लाति इति कला ।"
- आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी:"समीक्षाशास्त्र - (सं० २०१० वि०), पृ० २०६ ।

३ "साहित्य-वाचस्पति के पत्र"(लेख),"भाषा," द्विवेदी-स्मृति अंक,१९६४, पृ० १५१ ।

३ - लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन :

पत्र-साहित्य लेखक की लेखनी से सहज रूप से नि:सृत साहित्य है । अत: लेखक का वास्तविक व्यक्तित्व अन्य रचनाओं में नहीं, केवल पत्रों के पृष्ठों पर ही अंकित रहता है । "द्विवेदी-पत्रावली" की समीक्षा करते हुए डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने पत्र-विधा की इस विशेषता को सुन्दर ढंग से उद्घाटित किया है । उन्होंने लिखा है -" बहुत-सी बातें जो सार्वजनिक रूप से नहीं कही जा सकतीं या जो सार्वजनिक रूप से ज्ञात नहीं होतीं, वे पत्रों में सहज ही स्वीकार कर ली या कह दी जाती हैं: वह भी ऐसे क्षणों में जब पत्र-लेखक अपने स्वभाव और अकृत्रिम रूप में होता है ।"[१] इसी तथ्य को श्री शरद जोशी ने अपनी लाक्षणिक शैली में इस प्रकार व्यक्त किया है -"दूसरों की ज़िन्दगी के यथार्थ को पढ़ने का ऐसा शोर्टकट और कुछ नहीं हो सकता कि उसका लिफाफा ही खोल लिया । - - - पोस्ट-कार्ड तो जैसे गुदना कराये स्त्री का उघड़ा शरीर हो, देख लीजिए कौन-सी डिज़ाइन बनी है ।"[२]

इस प्रकार व्यक्तित्व की अपनी वैयक्तिक सत्ता होती है जो कि व्यक्तिगत जीवन में अधिक स्पष्टता से स्फुटित होती है । इसी कारण निजी पत्र जो मित्र-मिलापियों और सगे-सम्बन्धियों को लिखे जाते हैं, उनमें लेखक के हृदय का वास्तविक चित्र अंकित होता है । इस दृष्टि से किसी भी लेखक के पत्र उसके प्रकृत चरित्र के दर्पण होते हैं ।[३] सारांशत: पत्र-विधा में साहित्य की सब विधाओं की अपेक्षा लेखक के सही व्यक्तित्व का उद्घाटन अधिक होता है ।

---

१ "आलोचना," जनवरी, १९५५, पृ० १२५ ।

२ "ज्ञानोदय," पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ० १६२ ।

३ (क) अमृत राय :" चिट्ठी-पत्री" भाग-१, भूमिका, पृ० ५
"चिट्ठियां, किसी की भी, आईना होती हैं, उस आदमी की तबीअत का - - - "

(ख) James Howell ; " To the Sagacious Reader."

" As Keys do open chests,

So letters open breast. "
(Benham's Book of Quotations, 1948, P.188)

४ - पारस्परिक मैत्री-भावना या आत्मीयता की झलक :

पत्र-लेखक और भावग्राहक के बीच पारस्परिक मैत्री-भावना या आत्मीयता पत्र-विधा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। श्री उमेशचन्द्र मिश्र ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की "छिन्न पत्रावली" की चर्चा के प्रसंग में लिखा है कि "अन्य प्रकार की साहित्यिक कृतियां लेखक की सम्पत्ति होती हैं और वह लाभ उठाने के लिए प्रकाशित करना चाहता है, पत्र जो विभिन्न व्यक्तियों के पास सदैव के लिए लिखकर भेज दिये जाते हैं, बहुमूल्य भेंट होते हैं।[१] यही कारण है कि आत्मीयता से ओतप्रोत पत्रों को हम "किमपि द्रव्य" की भांति संजोकर रखते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने "पुराने पत्र" शीर्षक काव्य में लिखा है कि आज मुझे स्नेह-मुग्ध जीवन के स्मृति-चिह्न के समान तुम्हारे मधुर और प्यार भरे चार-छह पत्र दिखाई पड़े।[२]

पारस्परिक मैत्री-भावना और आत्मीयता के कारण ही पत्रों में सरसता और सजीवता आ जाती है। अतएव प्रकाशित होने पर इन पत्रों से पाठकों को भी आनंद प्राप्त होता है। इस प्रकार यह पत्र-विधा की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

५ - समकालीन घटनाओं की विवृत्ति :

पत्रों में जहां लेखक का प्रकृत चरित्र प्रतिबिम्बित होता है, वहां समकालीन घटनाओं के विषय में उसकी प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त होती हैं। इस दृष्टि से साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों आदि के पत्रों का दुहरा महत्व होता है। श्री बैजनाथसिंह "विनोद" ने इस दुहरे महत्व को प्रदर्शित करते हुए कहा है कि "किन्हीं महान् साहित्यकों,

---

१ "विश्वकवि रवीन्द्र" (१९५१), पृ० १०२।

२ "देखि परे कुछ आज पुराने
मोको पत्र तिहारे।
मधुर सनेह-मुग्ध जीवन के
चिह्न चार छै प्यारे।।"
- अनु० स्व० मुंशी अजमेरी, "विश्व भारती,"
श्रावण-आश्विन, सं० २००२, पृ० १८६।

युगविधायक महापुरुषों, दक्ष राजनीतिज्ञों तथा गम्भीर दार्शनिकों के पत्रों का दुहरा महत्व भी होता है, वे एक ओर पत्र-लेखन कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं, दूसरी ओर साहित्यिक प्रगति, ऐतिहासिक या राजनीतिक गतिविधि तथा दार्शनिक विचार-धारा का पूरा परिचय देते हैं।"[१] विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्रों में उपलब्ध समसामयिक सन्दर्भों की विस्तृत विवेचना प्रबन्ध के एक पृथक् अध्याय में की गयी है। यहाँ यही कहना अभीष्ट होगा कि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र उनके वास्तविक व्यक्तित्व के दर्पण होने के साथ-साथ समकालीन इतिहास के मूल्यवान दस्तावेज़ भी होते हैं।

६ - वार्तालाप की ध्वनि :

उत्तम पत्र में वार्तालाप की ध्वनि अवश्य विद्यमान रहती है।[२] कोम्पटन के सचित्र विश्वकोश में पत्र-लेखन कला को "डाक द्वारा बातचीत" शीर्षक दिया गया है।[३] अर्टेमेन, जिसने कि अरस्तू के पत्रों का सम्पादन किया है, के मतानुसार पत्रों को भी उसी ढंग से लिखा जाना चाहिए जैसे कि सम्वाद। उनके मत से पत्र, सम्वादों का विपरीत पहलू है।[४]

पत्र निःसन्देह ही सम्वादों से बड़े होते हैं। फिर ये लिखित होते हैं, इसलिए इनमें और मौखिक वार्तालाप में कुछ अंतर होना अनिवार्य है, किन्तु उनमें वार्तालाप की ध्वनि अवश्य विद्यमान रहती है।

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र"(१९५८), भूमिका, "ज"।

२ " A good letter is the nearest approximation on paper to good conversatation."
-"Letters of Great Writers"(1912),
Edited by Hedley Taylor, P. XXiii .

3"Talking by Mail-The a Art of Letter-Writing,"
-"Compton's Pictured Encyclopedia and Fact-Index"(1955), Vol.-8. P. 171.

4 "Arteman, who edited Aristotle's letters says that dialogue and letters should be written in the same manner. A letter, he says, is as it were the reverse side of a dialogue".
-"On Style", Dematrius, P. 250.
(उद्धृत : "द्विवेदी-युग की हिन्दी-गद्य-शैलियों का अध्ययन"(१९६५), डा० शंकर दयाल चौकड़िया, पृ० ४३५)

७ - स्वत: पूर्णता:

पत्रों की स्वत: पूर्णता से तात्पर्य यह है कि उनमें जीवन के किसी एक पक्ष या दृश्य का चित्र मात्र अंकित होता है, पूरे जीवन का लेखा-जोखा उनमें नहीं होता । अत: आकार की दृष्टि से कभी-कभी ये निबन्ध का रूप भी धारण कर सकते हैं, किन्तु प्रबन्ध नहीं बन पाते । बाबू गुलाबराय ने पत्र-विधा की इस विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है -

" पत्रों की स्थिति भी निबन्ध की भाँति मुक्तक-काव्य-की-सी होती है । वे स्वत: पूर्ण होते हैं ।"[१]

इस प्रकार पत्र किसी विशेष स्थिति, प्रसंग या घटना में लेखक की मनोदशा का पूरा चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं ।

८ - भावग्राहक के व्यक्तित्व की झाँकी :

पत्र-विधा की यह विशेषता है कि उसमें हमें लेखक के व्यक्तित्व के साथ भावग्राहक अर्थात् प्राप्तकर्ता के व्यक्तित्व की झाँकी भी मिलती है ।[२] इस दृष्टि से पत्र-साहित्य में भावग्राहक की स्थिति भी महत्वपूर्ण होती है । पत्र-लेखक अपना पत्र भावग्राहक के अनुकूल लिखने की चेष्टा करता है । इस सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि- "साधारण साहित्य और पत्र-साहित्य में केवल इस बात का अंतर होता है कि साधारण साहित्य में भावग्राहक के व्यक्तित्व का ध्यान नहीं रखा जाता है और न उससे कोई निजी सम्बन्ध होता है ।

१" काव्य के रूप " (१९५४), पृ० २६१ ।

२" A letter shows the man it is written to as well as the man it is written by"

- Rousseau .

(Quoted ; The New Dictionary of Thoughts" (1964). Compiled by Tryon Edwards, P. 351.)

साधारण साहित्य तो परिप्रेषित कर दिया जाता है, - जहां कहीं ग्राहक यंत्र होगा वहां ग्रहण कर लिया जायगा । पत्र-लेखक को अपने भावग्राहक के व्यक्तित्व और उसकी संवेदनशीलता का ध्यान रहता है, वह उसीके अनुकूल अपने पत्र को बनाता है । वहां तक व्यक्तित्व से टकराता है, कभी संघर्ष के लिए और कभी प्रेमपूर्ण प्रतिदान द्वारा पारस्परिक जीवन को अधिक-से-अधिक सम्पन्न बनाने के लिए ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि पत्र लिखते समय भावग्राहक, लेखक की आंखों से ओझल नहीं होता । दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध का पता हमें पत्र की शैली से चल जाता है । एकही लेखक द्वारा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को लिखे गये पत्रों की भाषाशैली में पर्याप्त अंतर दिखाई पड़ता है । जिस भावग्राहक के साथ लेखक का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, उसको लिखे गये पत्रों में कहीं अधिक अनौपचारिकता मिलती है । उदाहरण के लिए पं० बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने अनेक साहित्यकारों के नाम सुंदर पत्र लिखे हैं, परन्तु पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्रों में जो आत्मीयता, उन्मुक्ति और अनौपचारिकता हमें देखने को मिलती है, वह अन्यत्र नहीं दीख पड़ती । अभिप्राय यह कि पत्रों में लेखक और भावग्राहक के व्यक्तित्व के न्यूनाधिक प्रगटीकरण का आधार इन दोनों के बीच कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, उस पर रहता है । किन्तु पत्रों में दोनों के व्यक्तित्व का प्रकाशन तो होता ही है । अतः पत्र-साहित्य में भावग्राहक की स्थिति कम महत्वपूर्ण नहीं होती । बाबू वृन्दावनदास ने उचित ही कहा है -

"जहां साहित्यिक महत्व की दृष्टि से पत्र-लेखक वन्दनीय है, वहां वह व्यक्ति भी जिसको पत्र-लिखे गये, प्रशंसा के पात्र हैं । कारण उस व्यक्ति की और पत्र-लेखक की रूचि उसके उदात व्यक्तित्व के आकर्षण से ही उत्पन्न होती है । यदि उस व्यक्ति में जिसको पत्र लिखे गये कोई विशेषता न होती अथवा उसमें कोई आकर्षण न होता तो शायद महत्वपूर्ण पत्र लिखे ही न जाते और उनका अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाता है ।"[2]

---

१ "काव्य के रूप" (१९५४), पृ० २६१ ।

२ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), "प्राक्कथन", पृ० २ ।

इस प्रकार पत्रों में भावग्राहक के व्यक्तित्व की झांकी अवश्य मिलती है ।

उपर्युक्त विशेषताओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि पत्रों में एक व्यक्ति को जो कहना होता है उसे वह सीधा दूसरे व्यक्ति से कहता है । पत्र-लेखक और भावग्राहक एक दूसरे के स्वभाव, विचारों और भावनाओं से काफी से काफी परिचित होते हैं । इसी कारण दोनों के बीच एक आत्मीयता स्थापित हो जाती है।" मनुष्य जब भाषण देता है या लेख लिखता है तब उसकी नज़र के सामने एक बड़ा श्रोता-मण्डल या पाठक-समुदाय होता है । इसलिए उसका वक्तव्य या लेख सर्वसामान्य स्वरूप का होता है । पत्र में यह वस्तु विशेष एकाग्रता धारण करती है ।[1] अत: साहित्य की अन्य सभी विधाओं से पत्रों में लेखक के व्यक्तित्व का उद्घाटन अधिक होता है ।

पत्र की अपील कुछ क्षण के लिए व्यक्तिगत होते हुए भी उसका मूल स्रोत लेखक के कलात्मक व्यक्तित्व में होता है । अत: पत्र किसी भी पाठक के हृदय में रस का उद्रेक कर सकता है ।[2] विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्र उनके कलात्मक एवं महिमामंडित व्यक्तित्व के कारण ही प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं। इस प्रकार पत्र-विधा ने इन विशेषताओं के कारण साहित्य में अपना पृथक् अस्तित्व स्थापित कर लिया है ।

पत्र का अन्य विधाओं से सम्बन्ध

यद्यपि उपर्युक्त विशेषताओं के विवेचन से पत्र-विधा का पृथक् अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है, तथापि इसके सम्यक् स्वरूप-निर्धारण के लिए साहित्य की अन्य विधाओं से इसके साम्य-वैषम्य की चर्चा अपेक्षित है । कुछ विद्वानोंने इस विधा को अन्य विधाओं में समाविष्ट कर देने का जो प्रयास किया है,वह कहां तक युक्तियुक्त है, इसका स्पष्टीकरण भी इस चर्चा से हो जायेगा ।

१" नरहरि परीख :" बापू के पत्र सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम" (१९५२), संपा० मणिबहन पटेल, भूमिका ।

२" पं० राजबली पाण्डेय :" द्विवेदी पत्रावली"(१९५४), संपा० बैजनाथसिंह "विनोद", आमुख ।

१ - पत्र और पत्र-गीति :

यद्यपि पत्र-गीति एक प्रकार का पत्र ही है, किन्तु वह एक पृथक् काव्य-विधा है। "साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक कोश" के अनुसार "पत्रगीति पत्र के रूप में लिखी जानेवाली कविता को कहते हैं।"[१] सामान्यत: इसे अंग्रेजी के "एपिस्टल" का पर्याय समझा जाता है, किन्तु जैसा कि हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में देख चुके हैं, एपिस्टल पद्य और गद्य दोनों में लिखे जाते थे। वस्तुत: यह विधा छन्दोबद्ध काव्य (लिरिक) की समान धर्मा है।

पत्र और पत्र-गीति में मौलिक भेद यह है कि पत्र व्यक्ति-विशेष को लक्षित कर लिखे जाते हैं जब कि पत्रगीतियों की रचना का लक्ष्य व्यक्ति नहीं, समूह होता है। इसके अतिरिक्त पत्र में लेखक अपने जीवन की घटनाओं एवं समस्याओं की चर्चा करता है, इसलिए इसमें हमें सजीवता और उत्फुल्लता मिलती है। परन्तु पत्र-गीति में लेखक किसी ऐतिहासिक या काल्पनिक पात्र की ओर से पत्र लिखता है, इसलिए उसमें वर्णन, विवरण अथवा उपदेश का प्राधान्य रहता है। डा० निर्मला जैन ने इन दोनों के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

"एपिसिल उस पद्यबद्ध पत्र-गीति को कहते हैं जिसकी रचना यद्यपि पत्रात्मक शैली में किसी परिचित, इष्टमित्र व अन्य व्यक्ति को सम्बोधित करके की जाती है, परन्तु उसमें पत्र की-सी वैयक्तिकता या अन्त:स्फूर्ति भावोद्रेक नहीं होता।"[२]

हिन्दी में बंगला के माइकेल मधुसूदन की "वीरांगना" के अनुकरण पर कुछ पत्र-गीतियां लिखी गयी हैं जिनमें मैथिलीशरण गुप्त की "पत्रावली" में संकलित सात पत्र तथा निराला जी के "परिमल" में संकलित "महाराज शिवाजी का पत्र" विशेष उल्लेख्य हैं। इस प्रकार पत्र-गीति यथार्थ रूप से पत्र नहीं है। हिन्दी में इसका अधिक विकास भी नहीं हुआ है, जबकि मनीषियों के पत्रों ने साहित्य में आज महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

---

१ "साहित्यशास्त्र का परिभाषिक कोश" (१९५५), राजेन्द्र द्विवेदी, पृ०-१३८

२ "हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएं" (१९६३), पृ० ५०३ ।

२ - पत्र और आत्मकथा :

पत्र और आत्मकथा के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है । जिस प्रकार आत्मकथा को आत्म-प्रकाशन का साधन माना जाता है, उसी प्रकार पत्रों के माध्यम से भी आत्म-प्रकाशन का कार्य सम्पन्न होता है ।[१] आत्मकथा में भी लेखक को अपना कच्चा चिट्ठा खोलना पड़ता है ।[२] पत्र और आत्मकथा का लेखन प्रथम पुरुष में होता है और दोनों स्वयं लेखक के द्वारा ही लिखे जाते हैं । दोनों ही में लेखक के निजी जीवन के अनुभव, हर्ष-शोक, रागविराग आदि का उद्घाटन होता है । इस प्रकार एक उत्तम पत्र में एक प्रामाणिक आत्मकथा के अनेक उत्कृष्ट तत्व संनिहित होते हैं ।[३]

इसके अतिरिक्त लेखक की दृष्टि से विचार करें तो प्रतीत होता है कि पत्र-साहित्य के लेखक और आत्मकथा साहित्य के लेखक प्राय: अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति होते हैं । आत्मकथा लिखने में लेखक को अपने पत्रों से पर्याप्त सहायता मिलती है । आत्मकथा का आधार स्मृति है । परन्तु मेधावी लोग भी सभी बातें सदा के लिए स्मृति में स्थिर नहीं रख सकते । ऐसे में समय-समय पर इष्ट-मित्रों और स्वजन-परिजन को लिखे गये पत्र आत्मकथा लेखक के सहायक हो सकते हैं । डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल ने अपने शोध-प्रबन्ध "हिन्दी आत्मकथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन"[४] में " आत्मकथा और पत्र " के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए सूचित किया है कि हिन्दी के अनेक लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं में पत्रों का काफी उपयोग

१" डा० राम अवध द्विवेदी: "साहित्यरूप" (सं० २०२३वि०), पृ० १३८ ।

२" हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शताब्दी" (१९७२), संपा० डा० नगेन्द्र, पृ.३११।

३" Hedley Taylor: Editor: "Letters of Great Writers (1912), Introduction. P. XXii.
"Allready good letters have some of the fine good of honest auto-biography".

४"हिन्दी आत्मकथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन," (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), पृ० ३३-३४।

किया है । बाबू गुलाब राय ने पत्र और आत्मकथा के सम्बन्ध पर अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है -

"पत्रों का स्थान एक प्रकार से आत्मकथा में ही आता है । अन्तर केवल इतना ही है कि आत्मकथा में व्यक्ति का इतिहास सम्बद्ध होता है, पत्रों में कुछ असम्बद्ध-सा रहता है ।"[1]

पत्र और आत्मकथा में एक और अंतर है । डा० नारायण वि० शर्मा के अनुसार " आत्मकथाकार वर्तमानबोध के आलोक में विगत जीवन की स्मृतिरूप श्रृंखला के मध्य व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया दर्शाता है, किन्तु पत्रों में किसी विशिष्ट समय की स्वयं के सम्बन्ध में अथवा किसी और के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया हुआ करती है ।[2] पत्र और आत्मकथा के बीच के अंतर को डा० पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" ने बहुत उपयुक्त ढंग से इस प्रकार समझाया है-" स्वयं लेखक की अपनी लेखनी से प्रसूत होने पर भी आत्मकथा अनेक पक्षों की गोपनीयता के लिए बाध्य होती है । इसके विपरीत पत्र इतने अनौपचारिक होते हैं कि उनमें लेखक अपने यथार्थरूप में उपस्थित हो जाता है ।"[3]

पत्र और आत्मकथा के उद्देश्य में भी अंतर है । डा० भगवानशरण भारद्वाज ने आत्मकथा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि -"आत्म-कथा के मूल में आत्मप्रकाशन द्वारा आत्म-निर्माण, आत्म-परिष्कार या आत्म-समर्थन, अतीत की स्मृति को पुनर्जीवित करने या जटिल विश्व की विषम उलझनों में अपने आपका अन्वेषण करने के सात्विक आकर्षण से लेकर कलात्मक अभिव्यक्ति और ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा तक हो सकती है ।"[4] पत्र-लेखन के मूल में भी आत्म-प्रकाशन, आत्म-समर्थन आदि की भावना तो रहती है, किन्तु शुद्ध व्यावसायिक इच्छा का प्राय: अभाव ही होता है । इस प्रकार ये दोनों पृथक्-पृथक् विधाएं हैं ।

१" काव्य के रूप " (१९५४), पृ० २६० ।

२" हिन्दी आत्मकथा" (१९७८), पृ० ४१-४४ ।

३" साहित्यशब्द कोश," १९७१, पृ० २८१ ।

४" हिन्दी जीवनी साहित्य : सिद्धांत और अध्ययन " (१९७८), पृ० ४८ ।

३ - पत्र और जीवनी :

पत्र प्राय: व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्रेषित अभिलेख होता है । जीवनी को भी व्यक्ति-विशेष का अभिलेख कहा गया है ।[१] यद्यपि जीवनी-रूपी यह अभिलेख किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेषित नहीं होता , किन्तु वह पत्रों के समान यथार्थ जीवन का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है । जब हम महान् व्यक्ति के तिथि-क्रम से संकलित पत्रों को पढ़ने बैठते हैं तो ऐसा लगता है कि उनकी जीवनी ही पढ़ रहे हैं । "रूज़वेल्ट लेटर्स" (Roosevelt Letters) वस्तुत: अमेरिका के प्रेसीडेण्ट स्वर्गीय रूज़वेल्ट की जीवनी ही है ।[२]

जिस प्रकार जीवन-चरित्र बहुधा महान् व्यक्तियों के ही प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार पत्र-साहित्य भी महत्वपूर्ण व्यक्तियों का ही प्रकाश में आता है । जीवनी-लेखन में चरित-नायक से सम्बन्धित पत्रों से जो सहायता मिलती है, वह अन्य किसी साधन से प्राप्त नहीं होती । डा० भगवतीप्रसाद सिंह के शब्दों में -"जीवन की अन्तर्धाराओं के संधान में पत्रों का महत्व निर्विवाद है । इनसे व्यक्ति के मानस की उन सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों के अनुचिह्नों का पता लगता है जो जीवनी-निर्माण के अन्य उपकरणों से सामान्यतया लक्षित नहीं किये जा सकते ।"[३] हिन्दी की उत्तम और आदर्श समझी जानेवाली जीवनी "प्रेमचन्द : कलम का सिपाही" के लेखक श्री अमृतराय ने लिखा है कि" यदि प्रेमचन्द के पत्रों के बिना यह जीवनी लिखी जाती तो लंगड़ी होती, बेजान होती ।"[४]

पत्र-साहित्य और जीवनी-साहित्य में इतनी घनिष्ठता होते हुए भी दोनों कुछ भेद भी हैं । जीवनी का लेखक चरित-नायक के अतिरिक्त कोई अन्य होता है, जब पत्र स्वयं लेखक के द्वारा ही लिखे जाते हैं। पत्रों में जीवनी के समान व्यक्ति के सांगोपांग या क्रमबद्ध जीवन का चित्र भी नहीं मिलता । पत्रों में जीवन-चरित्रों से कहीं अधिक प्रामाणिक सामग्री होती है ।

1" Dictionaty of World Literature", J.T. Shipley, P. 29.

२ "हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास"(१९५८),डा०चंद्रावतीसिंह पृ० २१ ।

३ "मनीषी की लोकयात्रा"(१९६८),पृ० २२९ ।

४ "चिट्ठी-पत्री भाग-१"(१९६२), भूमिका, पृ० ४-५ ।

४ - पत्र और निबन्ध :

निजीपन और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की दृष्टि से पत्र और निबन्ध के बीच गहरा सम्बन्ध है । कदाचित् इसी कारण कुछ विद्वान् और विवेचक पत्रों को आत्मपरक अथवा संस्मरणात्मक निबन्धों के अन्तर्गत रख देते हैं । डा० शंकरदेव अवतरे ने अपने "हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में विभिन्न प्रकार के पत्रों को "निबन्ध के परिवार" में ही समेट किया है ।[१] निजत्व और व्यक्तित्व के अतिरिक्त वार्तालापीयता, आकार की लघुता, विषय की विविधता आदि कई तत्व पत्र और निबन्ध में समान रूप से पाये जाते हैं । इसी समानता को लक्षित कर डा० दशरथ ओझा ने लिखा है :-

"वास्तव में उत्कृष्ट निबन्ध एक खुला पत्र है जो किसी व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित करके नहीं लिखा गया होता, पर जो भी सहृदय पाठक उसे पढ़ता है, वह यही समझता है कि यहाँ लेखक मुझे सम्बोधित कर रहा है ।"[२]

डा० प्रभाकर माचवे के मतानुसार "निबन्ध का मंजिले-मकसूद अंतत: आत्मकथन या अपने निकटतर व्यक्ति को लिखे जानेवाले पत्र के समान है ।"[३] इस प्रकार पत्र और निबन्ध में कई दृष्टियों से साम्य है । किन्तु इसके आधार पर पत्र के पृथक् अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता । दोनों के बीच कई भेद-रेखाएं भी खींची जा सकती हैं ।

पत्र व्यक्ति-विशेष को लक्षित कर लिखा जाता है और निबंध किसी अदृष्ट और अज्ञात पाठक को लक्षित कर । यही कारण है कि पत्रों में निबन्ध की अपेक्षा आत्मीयता का पुट अधिक होता है । इन दोनों के बीच दूसरी भेदक-रेखा भाषा है । पत्रों में सामान्यत: बोलचाल की भाषा प्रयुक्त होती है, किन्तु निबन्ध की भाषा अधिक परिष्कृत होती है । अत: पत्र को निबन्ध से पृथक् विधा समझना अधिक समीचीन होगा ।

---

१ "हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग" (१९६२), पृ० २३३ ।
२ "समीक्षा-शास्त्र" (प्र० सं०), पृ० १८३ ।
३ "हिन्दी निबन्ध" (प्र० सं०), पृ० १४ ।

५ - पत्र और संस्मरण :

संस्मरण स्मृत्याधृत साहित्यविधा है । लेखक जो कुछ देख सुनकर अनुभव करता है संस्मरण में उसी की एक संवेदनात्मक अनुभूति होती है ।[१] संस्मरण की यह विशेषता हमें पत्रों में भी मिलती है । पत्रों में भी लेखक अपने अनुभव के सहारे प्रौढ़ टिप्पणियां देता है । सम्भवत: इसी विशेषता के कारण श्री महादेव साहा "पत्र-साहित्य को संस्मरण का पूरक "मानते हैं ।[२] पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने "हमारे आराध्य" और "संस्मरण" शीर्षक ग्रंथों में रोमां रोलां ; स्टीफ़न ज़्विग, पं० श्रीधर पाठक, गणेश-शंकर विद्यार्थी" आदि अनेक साहित्यकों के पत्र उद्धृत किये हैं । इस प्रकार पत्रों के उपयोग से संस्मरण में सजीवता और सप्राणता आ जाती है। परंतु संस्मरणकार घटनाओं का विवरण अधिक देता है । यही कारण है कि संस्मरण प्राय: विषयगत हो जाते हैं । पत्रों में लेखक केवल घटनाओं का विवरण ही नहीं करता, उन पर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है । अत: पत्र अपेक्षाकृत अधिक रोचक और रसप्रद होते हैं ।

६ - पत्र और रेखाचित्र :

रेखाचित्र भी पत्र की भांति एक वैयक्तिक कला है । डा० अनिता पाण्डेय के अनुसार "वैयक्तिकता के रहने के कारण रेखाचित्रकार का जीवनांश रेखाचित्र में सहज ही अनुस्यूत हो जाता है ।[३] डा० कृपाशंकर सिंहने रेखाचित्र का जो स्वरूप निरूपित किया है, वह पत्र के स्वरूप से पर्याप्त साम्य रखता है । उन्होंने लिखा है- "रेखाचित्र एक मनोवीथी के सदृश है जिसके दोनों ओर करुणा, सम्वेदना, अनुराग, विराग, अनुभूति आदि की कलिकायें चटखती चलती हैं ।[४] डा० हरवंशलाल शर्मा ने रेखाचित्र

१" हिन्दी का संस्मरण-साहित्य" (१९७०), राजरानी शर्मा, पृ० ५ ।
२" शरत् पत्रावली" (१९६१), भूमिका, पृ० ५ ।
३" हिन्दी रेखाचित्र: सिद्धांत और सृजन "(१९७८), पृ० २५ ।
४" रेखाचित्र : उद्गम और विकास" (प्र०सं०), पृ० १७ ।

की टेकनीक के सम्बन्ध में लिखा है कि -" उसमें थोड़े से शब्दों के द्वारा सजीव रूप-विधान और सफल अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है ।"[1] पत्रों में भी थोड़े में बहुत कहने की कला अपनानी पड़ती है ।

पत्र और रेखाचित्र में विभिन्नताएं भी कम नहीं है । पत्रों में लेखक का अपना और उससे सम्बद्ध व्यक्तियों का चित्र ही अंकित होता है । किन्तु रेखाचित्र में व्यक्ति के अतिरिक्त जड़ वस्तुओं का चित्र भी खींचा जाता है । रेखाचित्रों में कल्पना के रंग भी भरे जा सकते हैं, जब कि पत्रों में बहुधा यथार्थता का ही अंकन होता है । डा० रामगोपालसिंह चौहान के अनुसार "रेखाचित्र के विषय के साथ लेखक का निकट सम्पर्क आवश्यक नहीं है ।"[2] पत्रों का विषय स्वयं लेखक या उसका व्यक्तित्व ही होता है । जिसे पत्र लिखा जाता है, उसके साथ भी लेखक का निकट सम्बन्ध आवश्यक है । इस प्रकार पत्र और रेखाचित्र में वैषम्य भी है ।

७ - पत्र और डायरी :

साहित्य की वैयक्तिक विधाओं में पत्र और डायरी में अपेक्षाकृत अधिक नैकट्य है । डा० सत्येन्द्र ने डायरी की व्याख्या करते हुए लिखा है-" डायरी में लेखक अपनी दिनचर्या तथा दैनिक जीवन को प्रभावित करने-वाली घटनाओं का वर्णन करता है । यह तिथि-क्रम से लिखी जाती है ।"[3] पत्रों में भी लेखक प्राय: नित्यप्रति जीवन को प्रभावित करनेवाली घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । इनमें भी तिथि-निर्देश होता है । डायरी भी पत्र के समान लेखक की अपनी निजी वस्तु होती है । महान् व्यक्तियों द्वारा लिखी गयी डायरियां जनसाधारण के लाभ और मनोरंजन की वस्तु भी बन सकती हैं, इसलिए महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों की तरह उनकी डायरियां भी प्रकाशित हुई हैं ।

१" हिन्दी रेखाचित्र" (१९६९), पृ० ९ ।
२" आधुनिक साहित्य " (१९६५), पृ० ३१७ ।
३" समीक्षा के सिद्धान्त " (१९६८), पृ० १७८ ।

डायरी-लेखन और पत्र-लेखन में कुछ अंतर भी है । डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित ने सन् १९२३ से १९३३ के बीच लिखे गये महाकवि निराला के पत्रों को कवि की निजी डायरी जैसे उपयोगी बताकर प्रसंगत: डायरी और पत्र का अंतर भी स्पष्ट कर दिया है । यथा- "डायरी-लेखक तो फिर भी उसे स्थायी तथा सुरक्षणीय रचना समझकर (सम्हालकर) लिखता है, जब कि ये पत्र निश्छल मन के उद्गार हैं ।"[1] डायरी और पत्र के अंतर को डा० शंकरदेव अवतरे ने बहुत उपयुक्त ढंग से इन शब्दों में स्पष्ट किया है :-

"पत्र-साहित्य के पाठकको यह अनुभूति होनी चाहिए कि किसी की व्यक्तिगत बातें उसे पढ़ने को मिल गयी हैं, परंतु डायरी-साहित्य के पाठकों को यह अनुभूति रहनी चाहिए कि लेखक की व्यक्तिगत बातें उसे पढ़ने के लिए झिझक और अनुरोध के साथ मिली है । इस प्रकार आत्म-कथा की अपेक्षा डायरी जितनी कम व्यक्तिनिष्ठ पर अधिक व्यक्तिगत होती है, उतना ही डायरी की अपेक्षा पत्र-साहित्य कम व्यक्तिनिष्ठ पर अधिक व्यक्तिगत होता है ।"[2] इस प्रकार दोनों विधाओं में कुछ विभिन्नताएं भी हैं ।

८ - पत्र और पत्रकारिता :

जैसा कि पीछे संकेत किया गया है कि अखबार और मैगज़ीन भी पत्र अर्थात् "लेटर" के समान किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का माध्यम हैं । अत: उनके साथ भी पत्र" शब्द जोड़ा जाता है । इसी समानता के कारण "पत्रकार-कला के स्थान पर केवल "पत्र-कला" शब्द का ही प्रयोग किया जाता है ।[3]

---

१ "अलक्षित निराला" (१९७३), पृ० ८५ ।

२ "हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग" (१९६२), पृ० २३७ ।

३ देखिए:- (क) "द्विवेदी-काल से हिन्दी पत्र-कला का विकास" (निबन्ध), श्रीशिवदानसिंह चौहान, "साहित्यानुशीलन" (१९५५) पृ० ८७ पृ० ८७ ।

(ख) "हिन्दी पत्र-कला का बचपन" (लेख), श्री उमाशंकर, "माधुरी" अप्रैल १९४९, पृ० १७१ ।

न केवल इतना ही, बल्कि "पत्रकारिता" के स्थान पर "पत्र-साहित्य" शब्द का प्रयोग भी किया गया है।[1] परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं, बाबू गुलाब राय के "काव्य के रूप" (१९४७) के प्रकाशन से ही आलोचना के क्षेत्र में "पत्र-साहित्य" शब्द एक स्वतंत्र साहित्य-विधा के लिए निश्चित और स्थिर हो चुका है। अत: "पत्रकारिता" और पत्र-साहित्य दो पृथक्-पृथक् विधाएं हैं।

इसमें सन्देह नहीं है कि पत्र-साहित्य के विकास में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योग रहा है। विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों का जो पत्र-साहित्य आज ब पुस्तकाकार में उपलब्ध है, वह प्राय: पत्रकारिता की गोद में पलकर ही विकसित हुआ है। यही नहीं, सम्पादकों के नाम लिखे गये महत्वपूर्ण पत्र-जैसे, "चांद में प्रकाशित" दुबेजी की चिट्ठियां; सरस्वती" में प्रकाशित विद्यानिवास मिश्र के "भ्रमरानन्द के पत्र" तथा "कल्पना" में "और अंत में - - -"शीर्षक से प्रकाशित हरिशंकर परसाई के पत्र-सब प्रथम पत्रिकाओं में ही छपे थे। इसके अतिरिक्त प्राय: सभी पत्र-पत्रिकाओं में पाठकों के पत्रों के लिए एक स्थायी स्तम्भ[2] होता है जिसमें साहित्य के

---

१ "देखिए: (क) साहित्यालोचन: सिद्धांत और अध्ययन" (१९७२), डा० सीताराम दीन, पृ० १५३।

" पत्र-साहित्य को सामान्यत: दो रूपों में समझा जाता है। एक पत्रकारिता (जर्नलिजम) और दूसरा पत्र-साहित्य (लेटर्स)।"

(ख) भारतेन्दुयुग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा (१९७५) डा० रामविलास शर्मा, प्रकरण-४।

" पत्र-साहित्य और प्रगति"। (इस प्रकरण में भारतेन्दु-युगीन पत्र-पत्रिकाओं के विकास की चर्चा है।)

२ हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में पाठकों के पत्रों के लिए जो स्थायी स्तंभ रहते हैं, उनके शीर्षक इस प्रकार हैं:-

क्रम	पत्रिका	स्तंभ का शीर्षक	क्रम	पत्रिका	स्तंभ का शीर्षक
१	आजकल	सम्पादक जी	४	धर्मयुग	आपका पत्र मिला
२	कादम्बिनी	आपके पत्र	५	नवनीत	पत्र-वृष्टि
३	दिनमान	मत-सम्मत	६	सारिका	पाठकों का पन्ना

साथ-साथ राजनीति और अन्य ज्ञान-विज्ञान की चर्चा भी रहती है। यद्यपि सभी पाठक प्रबुद्ध और सचेत नहीं होते हैं, किन्तु साहित्यिक रुचि-सम्पन्न पाठकों के पत्र पठनीय होते हैं। कभी-कभी सम्पादक पाठकों के पत्रों के उत्तर में उन पत्रों के नीचे अपनी संक्षिप्त टिप्पणी भी देते हैं। डा० कृष्णबिहारी मिश्र ने अपने "हिन्दी पत्रकारिता" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में "उदन्त मार्तण्ड" में प्रकाशित व्यापारी-पाठकों के पत्र तथा सम्पादक के उत्तर के उद्धरणों से यह स्पष्ट किया है कि हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भ से ही यह परम्परा चली आ रही है।[1]

पत्र-साहित्य और पत्रकारिता को प्राय: सामयिक साहित्य समझा जाता है। किन्तु पत्र-साहित्य अपेक्षाकृत अधिक स्थायी है। प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्र, पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो जाने पर साहित्य की स्थायी निधि बन जाते हैं जबकि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्य लोकप्रिय साहित्य के समान स्थायीत्व नहीं पा सकता। डा० सिस्टर क्लेमेन्ट मेरी के अनुसार पत्र-पत्रिकाओं का साहित्य (Periodical Literature) लोकप्रिय साहित्य की तरह क्षणजीवी होता है। वह विचारात्मक सा साहित्य नहीं है और साहित्य के इतिहास का अंग नहीं बन पाता- - - परन्तु निबन्ध, डायरी, पत्र आदि को युग की आवश्यकता के अनुसार वैचारिक गद्य का माध्यम माना जा सकता है।"[2] इसके अतिरिक्त पत्र-साहित्य विषयी-निष्ठ होता है और पत्रकारिता विषय-निष्ठ। इस प्रकार दोनों के क्षेत्र और उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पत्र-साहित्य का अन्य विधाओं से कई दृष्टियों से सम्बन्ध होते हुए भी वह एक स्वतंत्र विधा है। इसमें गीति-काव्य और निबन्ध की-सी वैयक्तिकता होने पर भी इसे पत्र-गीति और निबन्ध के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसमें लेखक का अपना जीवन और व्यक्तित्व लिपिबद्ध होने पर भी इसे आत्मकथा नहीं माना जा सकता। जीवनी-निर्माण के लिए यह अन्यतम उपकरण होते हुए भी जीवनी नहीं है। संस्मरण और रेखाचित्र से भी यह पर्याप्त भिन्नता लिए हुए हैं। डायरी के समान एक वैयक्तिक संपत्ति होते हुए निश्छल अभिव्यक्ति के कारण यह उससे भिन्न है। पत्रकारिता से भी इसका क्षेत्र अलग है। संक्षेप में, यह साहित्य की एक पृथक् विधा है।

---

१ "हिन्दी पत्रकारिता" (१९६८), पृ० ४०।
२ "हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य" (प्र०सं०), पृ० १० तथा ६४।

पत्र के तत्व

पत्र-लेखन एक विशेष कला है । प्रत्येक कला के कुछ ऐसे तत्व या उपकरण होते हैं जिनसे कलाकृति की रचना होती है । विभिन्न विद्वानों ने पत्र-लेखन कला के भी कुछ ऐसे ही तत्व निश्चित किये हैं ।

श्री यज्ञदत्त शर्मा ने सफल पत्र के चार गुण निश्चित किये हैं:- (१) संक्षिप्ति, (२) सरलता (३) शक्तिमत्ता और (४) सहजता ईमानदारी ।[1] उनका कहना है कि इन चारों गुणों के अनुसार पत्र-लेखन के निर्देशक सिद्धान्त प्रभावशाली पत्राचार के मूलाधार हैं । सभी युग के महान् लेखकों ने जान-अनजान में इन सिद्धान्तों का पालन किया है ।[2]

श्री धर्मचन्द संत और बलदेव कृष्ण ने अपनी "सिद्धान्तालोचन" शीर्षक पुस्तक में पत्र के तत्वों का निर्देश देते हुए लिखा है- "अन्य सामान्य तत्वों के अतिरिक्त पत्र के दो प्रमुख तत्व होते हैं - आत्मीयता और स्वाभाविकता ।"[3]

डा० शांति खन्ना ने अपने शोध-प्रबन्ध "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य में पत्र के निम्नलिखित पांच तत्व निर्धारित किये हैं:-

(१) वर्ण्य-विषय, (२) पात्रों और घटनाओं से सम्बन्ध और उनके प्रति प्रतिक्रिया, (३) उद्देश्य, (४) देशकाल वातावरण और (४) शैली ।[4]

उपर्युक्त विद्वानों द्वारा निर्धारित पत्र के तत्वों से ज्ञात होता है इनमें उत्तम पत्र की विशेषताओं का भी तत्व के रूप में उल्लेख किया गया है । डा० खन्ना ने पत्र को जीवनी-साहित्य का अंग समझकर उसके तत्व निश्चित किये हैं । यहां हम पत्र के रचना-विधान को ध्यान में रखकर उसके तत्वों पर विचार करेंगे ।

---

१ "आदर्श पत्र लेखन" (१९७४), पृ० ५ ।

२ - वही - ।

३ "सिद्धांतालोचन" (प्र० सं०), पृ० २१९ ।

४ "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" (१९७३), पृ० ५८-६२ ।

रचना-विधान की दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि शीर्षक और सिरनामा, सम्बोधन और अभिवादन, परिचय और हस्ताक्षर - ये पत्र के ऐसे स्थिर अंग हैं जो अनिवार्यत: सभी पत्रों में विद्यमान रहते हैं। इन्हें हम पत्र के बहिरंग तत्व भी कह सकते हैं। प्राचीन या परम्परागत पत्र-लेखन पद्धति के अनुसार पत्रों में शीर्षक और सिरनामा किस प्रकार लिखना चाहिए, किसको किन-किन शब्दों से सम्बोधित करना चाहिए, इसकी विस्तृत व्याख्या वररुचिकृत "पत्र-कौमुदी"[1] में की गयी है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चारों वर्णों के लोगों को परस्पर किस तरह के सम्बोधनों से पत्र लिखना चाहिए, इसकी विस्तार से जानकारी श्री बालकृष्ण त्रिपाठीकृत "प्रशस्तिकाशिका"[2] में दी गयी है। नवीन या अर्वाचीन पत्र-लेखन प्रणाली के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन, परिचय-हस्ताक्षर आदि से सम्बन्धित नियमों की विस्तृत चर्चा पं० देवनारायण द्विवेदी ने अपने "पत्र-कला"[3] शीर्षक लेख में की है। हिन्दी के अनेक पत्र-लेखकों ने इन अंगों में अनेक प्रयोग किये हैं। "उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" शीर्षक पत्र-संग्रह में हमें सम्बोधन-अभिवादन तथा परिचय-हस्ताक्षर-सम्बन्धी अनेक नवीन प्रयोग देखने को मिलते हैं।

पत्र के अंतरंग तत्वों में उन तत्वों का समावेश होता है जो जीवनीपरक साहित्य की अन्य विधाओं में सामान्यरूप से पाये जाते हैं। इन तत्वों को हम निम्नांकित शीर्षकों में वर्गीकृत कर सकते हैं:-

(१) वर्ण्यविषय, (२) विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में लेखक की प्रतिक्रिया, (३) परिवेशांकन, (४) भाषा-शैली और (५) उद्देश्य।

---

१ देखिए : " Patra-Kaumudi of Vararuci " (Article), by Suresh Chandra Banerji, Bulletin of the Deccan College, Poona, Vol.-20, Part.1-4, P. 14-18.

२ "प्रशस्तिकाशिका", संपा० के०वी० शर्मा, पृ० २-३८।

३ "मनोहर पत्र," संपा० सूर्यबलीसिंह, पृ० ४७-५२।

संक्षिप्तता, सरलता, स्वाभाविकता, आत्मीयता आदि पत्र की विषय और शैली से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं । अब हम उपर्युक्त तत्वों की क्रमशः संक्षिप्त चर्चा करेंगे ।

१ - वर्ण्य विषय :

पत्रों में कई प्रकार के विषयों की चर्चा रहती है । इनमें व्यक्तिगत जीवन और गोपनीय घटनाओं से लेकर दैनिक क्रियाकलापों, जटिल समस्याओं, व्यावसायिक धंधों, साहित्यिक, राजनैतिक पहलुओं आदि अनेक विषयों का वर्णन-विवरण किया जाता है । परन्तु पत्रों का मुख्य विषय लेखक स्वयं होता है । दूसरे शब्दों में पत्र में लेखक-चाहे किसी भी विषय की चर्चा करें, किन्तु उसके व्यक्तित्व की छाप तो न्यूनाधिकरूप में रहेगी ही । इस प्रकार पत्र का मुख्य विषय लेखक के व्यक्तित्व का दिग्दर्शन ही होता है । पत्र-लेखक चाहे किसी भी क्षेत्र का हो, उसके पत्रों में उसका व्यक्तित्व प्रकट हुए बिना नहीं रहेगा । राजनीतिज्ञ के पत्र राजनीति से अछूते नहीं रह सकते । कलाकारों के पत्रों में कला की चर्चा होगी ही, इसे कोई नहीं रोक सकता । सम्पादक कितना ही व्यक्तिगत पत्र क्यों न लिखे, उसमें कहीं-न-कहीं उसका सम्पादक बोल उठेगा । तात्पर्य यह कि राजनीति, समाज, दर्शन, धर्म, साहित्य, व्यवसाय आदि अनेक विषयों की चर्चा पत्रों में हो सकती है, किन्तु इनमें लेखक के व्यक्तित्व का न्यूनाधिक उद्घाटन होगा ही । औपचारिक पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व घनिष्ठ मित्रों को लिखे गये पत्रों से अपेक्षाकृत कम उद्घाटित होता है ।

वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट बनाने के लिए उसमें स्वाभाविकता, सरलता, स्पष्टता, प्रवाहिता आदि गुणों का होना आवश्यक है । पत्र की प्राणभूता शक्ति उसके सहज सत्य में निहित है । इस सम्बन्ध में डा० विश्वनाथ शुक्ल ने लिखा है कि "यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि पत्र-लेखन स्वयं एक सुन्दर कला है और उसका सौंदर्य एक विशिष्ट आकर्षण रखता है, तथापि सहज सत्य के अनिवार्य उपादान से साधारण से साधारण पत्र भी बड़ा मोहक हो जाता है । विश्व में अनेक महान् पत्र-लेखक हुए हैं जिनके पत्र उनके साहित्य से कम रंजक नहीं हैं । इन पत्रों में निहित सहज सत्य ही उनकी महान् शक्ति है ।" [१]

---

१ "हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास," चतुर्दश भाग, पृ० ५०६-५०७ ।

इस प्रकार पत्र-लेखक को वर्ण्य विषय का निरूपण सहजिकता, सरलता और स्पष्टता से करना चाहिए । "पत्र के भीतर" शीर्षक एक कवि-कविता में श्री मदनमोहन "उपेन्द्र" ने यही भाव व्यक्त किया है कि पत्र के भीतर सभी कुछ पृष्ठ पर इस प्रकार सहज रूप से मुखरित होना चाहिए जैसे किसी झरने से पानी झरने लगता है, क्योंकि बिना रवानी के पत्र आकर्षित नहीं करता ।[१] "लेटर्स ओफ ग्रेट राइटर्स" शीर्षक पत्र-संग्रह के सम्पादक श्री टायलर महोदय ने भी सरलता और स्वाभाविकता को इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की कुंजी माना है ।[२]

हिन्दी में पं० पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि के पत्रों में हमें वर्ण्यविषय की उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं ।

२ - विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में लेखक की प्रतिक्रिया :

पत्रों में वर्णित व्यक्तियों तथा घटनाओं के प्रति पत्र-लेखक का व्यक्तिगत सम्बन्ध होता है । यदि वह किसी व्यक्ति का वर्णन अपने पत्र में करता है तो अवश्य रूप से उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का उससे सम्बन्ध होगा । या तो उसका व्यक्तित्व लेखक को प्रभावित करता होगा या उससे उसको कष्ट होगा । लेखक उसके व्यक्तित्व का वर्णन ही नहीं करता, वरन् उस पर टीका-टिप्पणी भी करता है । उसके व्यक्तित्व-

---

१ "डाक-तार", जून १९७८, पृ०-६ ।

"पत्र के भीतर - - - - - -
सभी कुछ पृष्ठ पर मुखरित
सहज बन यों झरे
ज्यों किसी झरने से झरे पानी ।
क्योंकि ?
रवानी के बिना तो पत्र
आकर्षित नहीं करता ।"

२ " Letters of Great Writers "(1912), Edited by Hedley Taylor, Introduction, P. XXiii-iv.

"Success in this direction is the autmn fruit of a fine simplicity and the secret is just naturalness"

-सम्बन्धी गुण-दोषों का विवेचन स्पष्ट रूप से करता है । यही बात घटनाओं के विषय में कही जा सकती है । जहां लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करता है, वहां पर उन घटनाओं का प्रभाव भी दिखलाता है । उसके जीवन में जो भी घटना घटती है उसका उससे सीधा सम्बन्ध होता है । यही नहीं, सामयिक घटनाओं तथा अन्य व्यक्ति जिससे उसका सम्बन्ध होता है उसके जीवन में घटित घटनाओं का प्रभाव भी लेखक पर पड़ जाता है तो उसका विवेचन भी वह अपने पत्रों में करता है । उदाहरणार्थ पं० पद्मसिंह शर्मा ने अपने ६-१२-१९२९ के पत्र में श्री हरिशंकर शर्मा को बनारसीदास चतुर्वेदी के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था :

"---- बात यह है कि चतुर्वेदीजी कुछ 'हौलू' तबीअत के आदमी हैं, और प्रोपेगेंडिस्ट हैं । जिस लाइन में पड़ गये हैं यह इनकी तबीअत और आदत के खिलाफ है ।"[1]

इसी प्रकार अपने यहां हुई चोरी की घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने श्री राय कृष्णदासजी को लिखा था :

"---- १६ जून की रात को मेरे घर यहां चोरी हुई । नकद, जेवर, कपड़े, बर्तन कोई २०००) का माल उठ गया । यहां और था ही क्या । १० रोज़ हुए न चोरी का पता न चोरों का । जूता टोपी तक मेरी गई । धोती मात्र रह गई । नंगा बैठा हूं । कुटुम्बियों की प्राय: यही हालत है । कानपुर से पहनने को कपड़े मंगाने हैं । मैं शान्त हूं । संसार ही नाशवान है, चीज-वस्तु की कौन बात । पर कुटुम्बियों को बहुत कष्ट हुआ है ।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि लेखक अपने पत्रों में विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में जो प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, उससे उसके व्यक्तित्व तथा जिस व्यक्ति का वर्णन करता है उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है ।

---

१ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), संपा० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा, पृ० ४६ ।

२ "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), संपा० बैजनाथसिंह 'विनोद', पृ० १४५ ।

३ - परिवेशांकन :

पत्रों को वास्तविकता का पुट देने में परिवेश का महत्वपूर्ण योग रहता है । परिवेश अथवा वातावरण उन परिस्थितियों का संकुल नाम है ; जिनमें पत्र-लेखक को संघर्ष करना पड़ता है । अत: परिवेश की पृष्ठभूमि के बिना लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता । परिवेश के अन्तर्गत लेखक अपने आसपास के वातावरण का चित्र ही नहीं प्रस्तुत करता, अपितु आवश्यकतानुसार सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि परिस्थितियों पर टिप्पणियां भी देता है । वस्तुत: पत्र-लेखक का उद्देश्य इन परिस्थितियों का चित्रण करना नहीं होता, इनका चित्रण तो अनायास ही हो जाता है । जैसे, पन्त जी बच्चन जी को पत्र लिखते समय इलाहाबाद के तापमान का वर्णन करते हुए कहते हैं- " यहां इतनी गर्मी है कि सांस लेना कठिन है ! जैसे गरम तेल की कड़ाह में मछलियां भुन रही हों- ऐसी दशा त्वचा की हो गयी है ।"[१]

इसी प्रकार "निराला" जी ने अपने पत्रों में, कहीं संक्षेप में तो कहीं विस्तार से, अपने परिवेश का सुन्दर चित्रण किया है । उदाहरणत: ८-७-१९४५ को केदारनाथ अग्रवाल के नाम प्रेषित पत्र में वे लिखते हैं :- "यहां पानी गिरा । एकाएक यमुना में बाढ़ आई, गंगा भर गई- मुहाने का पानी रेलकर चढ़ आया, रेत डूब गई ।"[२] इस प्रकार यह एक पूर्ण चित्र है और किसी लघु यथार्थवादी कविता की तरह कलापूर्ण भी ।

अपने पत्रों में लेखक कहीं-कहीं किसी विशेष स्थान या नगर का वर्णन भी मित्रों एवं स्नेहियों को लिख भेजता है । निरंकारदेव सेवक के नाम लिखे २ जुलाई १९५५ के पत्र में बच्चन जी ने नेपाल के सम्बन्ध में कहा है - " नेपाल में घूमने-देखने को बहुत जगहें और बहुतसी चीजें हैं । किसीने लिखा है कि यहां आदमी से अधिक मूर्तियां और घरों से अधिक मन्दिर हैं ।

१" बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० १६२ ।

२" निराला की साहित्य - साधना " भाग- ३ (१९७६), पृ० ३५२ ।

और यहां आकर पता लगता है कि इसमें अतिशयोक्ति बिलकुल नहीं है ।[1] इसके अतिरिक्त अनेक लेखकों ने अपने पत्रों में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि परिस्थितियों का प्रसंगत: व यथार्थ चित्रण किया है जिसकी विस्तृत चर्चा आगे यथास्थान की जायेगी । उपर्युक्त विवचन तथा उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि परिवेशांकन पत्र-लेखक के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचायक है ।

४ - भाषा-शैली :

भाषा मनुष्य के मन में होनेवाली एक सहज प्रक्रिया है । वह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के विकास के लिए एक उपयोगी साधन है । भाषा और शैली पत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है ।

सामान्यत: पत्रों की भाषा लिखनेवाले की अपनी उस समय की मनोवृत्ति के अनुरूप होती है । जैसे, दो हमजोलियों अथवा प्रेमियों के पत्रों की भाषा में स्निग्धता और मिठास लबालब रहेगा, शब्दों का चुनाव ऐसा होगा कि जिससे मनमें गुदगुदी पैदा हो । अंग्रेजी में कवि कीट्स और फेनी ब्राउन के पत्रों में हमें ऐसी ही स्निग्धता मिलती है । हिन्दी में अमृता प्रीतम द्वारा इमरोज़ को लिखे गये पत्रों की भाषा भी मधुर एवं मोहक है । इसके विपरीत व्यावहारिक पत्रों में हमें जो कहना है वह हम उस प्रकार कह देते हैं जिससे भाषा में रूखापन और अशिष्टता नहीं आ पाती । पत्रों की भाषा-शैली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए डा० शंकरदयाल चौकशि ने लिखा है :-

" पत्रों में बहुधा स्थूल भावों की ही अधिकता रहती है । सूक्ष्म, संश्लिष्ट भावों तथा विचारों को विशेष स्थान नहीं रहता । इसलिए भावानुकूल भाषा-शैली सीधी, सरल तथा स्वाभाविक रहती है । सजावट तथा अलंकारविधान प्राय: नहीं रहता । हां, आकर्षण अवश्य रहता है जिससे सैकड़ों मील दूर बैठे हुए दो हृदय पास आ जाते हैं ।"[2]

---

१ "बच्चन के पत्र" (१९७२), संपा० निरंकारदेव सेवक, पृ० ३५ ।

२ "द्विवेदी-युग की हिन्दी गद्य-शैलियों का अध्ययन" (१९६५), पृ० ४३५ ।

पत्रों की भाषा-शैली वस्तुत: लेखक और भावग्राहक के व्यक्तित्व के अनुरूप होती है । उसमें अलंकार-विधान भी हो सकता है । साहित्यकारों के, विशेषत: कवियों के पत्रों की भाषा में यत्र-तत्र अलंकार की छटा भी मिल जाती है । पं० पद्मसिंह शर्मा, महाकवि 'निराला, सुमित्रानन्द पन्त, हरिवंशराय 'बच्चन' आदि के पत्रों की भाषा साहित्यिक सौंदर्य से युक्त है । डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में उनके चिन्तन का पुट मिलता है । भाषा-शैली की उत्कृष्टता के कारण ही वैयक्तिक पत्रों को 'साहित्य का रूप प्राप्त होता है । बाबू गुलाबराय ने बहुत उपयुक्त कहा है :

"पत्रों में भी वही बात है जो प्रत्येक साहित्य में होती है । लेखक के हृदय में कुछ कहने के लिए उत्साह होता है और वह उत्साह या मन के रस को अपनी वाणी द्वारा दूसरों तक संक्रमित कर देता है । एक मनुष्य अपने मित्र को अपने व्यवहार की सफाई देता है । यदि वह ईमानदार है, यदि उसकी लेखनी में कुछ बल है और वह अपनी सफाई में सफल हो जाता है तो उसके पत्र, साहित्य का रूप धारण कर लेंगे ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि पत्र-विधा में भाषा-शैली ही वह व्यवच्छेद तत्व है, जो उन्हें व्यावहारिक पत्रों से अलग कर देता है । आत्मीयता , प्रभावोत्पादकता, संक्षिप्तता आदि पत्र-शैली की मुख्य विशेषताएं हैं ।

अन्य साहित्य-रूपों में लेखक सीधे रूप में हमारे सामने नहीं आता । पत्र-साहित्य में उसका अपनापन प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होता है । आत्मीयता का सम्बन्ध लेखक के अपने व्यक्तित्व के साथ भी होता है और दूरस्थ ~~व्य~~ व्यक्ति के साथ भी । महत्वपूर्ण व्यक्तियों के आत्मीयतापूर्ण पत्र-व्यवहार में साधारणीकरण की क्षमता होती है । अत: वह प्रकाशित किया जाता है । आत्मीयता की भावना से लिखे गये पत्र साधारण पाठक को भी आनन्द देते हैं ।

१" काव्य के रूप " (१९५४) ,
पृ० २६० ।

प्रभावोत्पादकता पत्र की शैली की दूसरी प्रमुख विशेषता है । वार्तालाप में हम स्वयं बोलते हैं और पत्र-व्यवहार में पत्रों को बोलना पड़ता है । बात-चीत में अपने कथन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए हम इंगितों की सहायता भी लेते हैं । यही नहीं, वहां मूल-सुधार के लिए भी अवसर मिलता है, किन्तु पत्र लिखते समय उक्त सुविधाएं नहीं मिलती । जिससे हमें कुछ कहना है, वह दूर बैठा है । अतः पत्र-लेखन में वह टेकनीक अपनानी पड़ती है जिससे दूर बैठे हुए व्यक्ति पर उतना ही प्रभाव पड़ सके जितना प्रभाव सामने वार्तालाप करने पर पड़ता है । इसीलिए शब्द-शक्ति का समुचित उपयोग करना पड़ता है । भाषा में भावग्राहक के अनुरूप शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है और साथ ही विषय को उत्कृष्ट बनाने का प्रयास भी करना पड़ता है । यह सब अच्छे शैलीकार के लिए सहज साध्य हैं ।

संक्षिप्तता पत्र-शैली की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है । बाबू वृन्दावनदास की पत्र-लेखन कला की चर्चा करते हुए डा० श्यामसुन्दर बादल ने पत्र की शैली के तीन प्रकार बतलाये हैं :-(१) विस्तृत या लेख-शैली, (२) स्वस्थ या नार्मल शैली और (३) संक्षिप्त या तार-शैली ।[१] विस्तृत शैली में शिष्टाचार बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता है तथा अनावश्यक बातें भी लिख दी जाती हैं । इस प्रकार पत्र लेख का रूप धारण कर लेता है । स्वस्थ शैली में शिष्टाचार और काम की बात नपे-तुले शब्दों में ही लिखी जाती है । संक्षिप्त शैली में पत्र प्रायः तार की भाषा में ही लिखा जाता है ।

हमारे प्राचीनकालीन पत्रों में विस्तृत शैली का प्रयोग होता था । उनमें शिष्टाचार बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता था । आज पत्रों में अधिकतर स्वस्थ शैली का प्रयोग होता है । पत्र को तार बना देना उचित नहीं है । विशेषकर ऐसे पत्रों में जिनमें विस्तृत चर्चा की अपेक्षा हो, उनमें तार-शैली का प्रयोग ठीक नहीं है । प्रसिद्ध आंग्ल पत्र-लेखक डा० सेम्युअल जानसन ने लिखा है कि कुछ विस्तृत चर्चा की आवश्यकता होने पर दूरस्थ

---

१ "निष्णात पत्र-लेखक" (लेख), "बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रंथ," पृ० ६२ ।

इष्ट-मित्रों को संक्षिप्त पत्र भेज देना, एक तरह से उनका अपमान करना है ।[1]

वस्तुत: संक्षिप्तता का सम्बन्ध आकार या पृष्ठों की संख्या से नहीं है । वैसे प्रेम-पत्रों के इतिहास में विश्व का सबसे लम्बा पत्र[2] ८०० पृष्ठों में पूरा हुआ था और सबसे छोटा पत्र[3] दो शब्दों में । किन्तु ये दोनों ही स्थितियां सीमाकी अति हैं । पत्र की संक्षिप्तता का पता आवश्यक-अनावश्यक शब्दों की संख्या से चल सकता है । इस सम्बन्ध में श्री यज्ञदत्त शर्मा का यह कथन उद्धरणीय है :-

---

१ " A short letter to a distant friend is, in my opinion, an insult like that of a slight bow or cursory salutation- a proof of unwillingness to do much, even where there is a neccessity of doing something."
_Dictionary of Quotations"(1968), Edited by Bergen Evans P. 384.

२ " महारानी एलिजाबैथ प्रथम के शासनकाल में एक प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को सम्भवत: आज तक का सबसे लम्बा पत्र लिखा था । उसमें कुल बीस हजार शब्द और ८०० पृष्ठ थे । विश्व का यह सबसे लम्बा प्रेम-पत्र आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है ।"

- " ज्ञानोदय ", पत्र-विशेषांक, नम्बर १९६३, पृ० १६२ ।

२ " प्रेम-पत्रों के इतिहास में सबसे छोटा-प्रेम-पत्र इंग्लैण्ड के भूतपूर्व प्रधान-मंत्री लायड जार्ज ने लिखा था । उन्होंने अपना यह पत्र फ्रांस की एक नर्तकी को भेजा था । इस पत्र में कुल दो ही शब्द थे : " प्रणय-याचना ।" और उत्तर में उक्त नर्तकी ने लिखा था : " अफसोस " !

- वही - , पृ० १६३ ।

" लेकिन यहीं पर संक्षिप्ति का सही अर्थ समझना भी आवश्यक है । - - - पत्र की संक्षिप्ति की माप पैमाने के चिह्नों से नहीं, वरन् पेन्सिल की नोक से होती है । पत्र में उन शब्दों गिनिये जो "कथा" में सहायक नहीं हैं, अनावश्यक शब्दों की संख्या शून्य है तो पत्र संक्षिप्त है- फिर चाहे वह तीन पृष्ठों का हो या आठ पृष्ठों का ।"[१]

इस प्रकार संक्षिप्तता की कसौटी आवश्यक शब्दों की संख्या है । बात को आवश्यक शब्दों में व्यक्त कर देना पत्र शैली की सबसे बड़ी विशेषता है ।

उपर्युक्त सब विशेषताओं से युक्त पत्र-शैली ही पाठक को प्रभावित कर सकती है ।

६ - उद्देश्य :

पत्र-साहित्य का उद्देश्य भी अन्य साहित्यिक विधाओं के समान आत्माभिव्यक्ति ही है । इसमें प्रसंगत: अन्य विषयों की चर्चा मिल जाती है, किन्तु पत्र-लेखक का मुख्य लक्ष्य अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन करना ही है। यद्यपि पत्र व्यक्ति द्वारा व्यक्ति-विशेष को लिखे जाते हैं, किन्तु अपनी सार्वजनीन मानवीय तत्त्वराशि के कारण समस्त मानव-समाज ही उनसे साहित्य के व्यापक प्रयोजन "शिवेतर क्षति" की सिद्धि कर सकता है ।

पत्र-साहित्य में लेखक के पारस्परिक सम्बन्ध, विचार, भावना, आवेग, प्रेरणा आदि की अभिव्यक्ति होती है । इस प्रकार इसमें लेखक का उद्देश्य आत्मजीवन की व्याख्या करना होता है, किन्तु इस व्याख्या में वह नितांत निरपेक्ष नहीं रह सकता । जीवन और जगत् के प्रति वह अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है । उसके पत्रों में उसकी जीवन-सम्बन्धी मान्यताओं, विचारों, विश्वासों, धारणाओं आदि का संकेत मिल ही जाता है । उद्देश्य तत्त्व में इन्हीं धारणाओं को ग्रहण किया जाता है।

कभी-कभी लेखक जीवन के अनुभवों से दूसरों को लाभान्वित करने की दृष्टि से भी पत्र लिखता है । महाराजा छत्रसाल द्वारा अपने पुत्र -

---

१ " आदर्श पत्र-लेखन " (१९७४), पृ० ६-७ ।

जगतराज को लिखे गये पत्र, महात्मा गांधी द्वारा मीरा बहन को लिखे गये पत्र आदि इसी उद्देश्य को व्यक्त करते हैं । आत्म-तोष की उपलब्धि भी पत्र-लेखन का एक उद्देश्य हो सकता है । ग़ालिब आदि अनेक पत्र-लेखकों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पत्र लिखे हैं । इस सम्बन्ध में "ग़ालिब के पत्र" भाग-१ की भूमिका में कहा गया है - " --- कई बार लिफ़ाफे के लिए पैसे न रहते । टिकट खरीदना ग़ालिब के लिए सम्भव न होता, फिर भी वे पत्र लिखते थे । पत्र लिखने से उनकी आत्मा को अपूर्व संतोष मिलता , इसीलिए वे अपने मित्रों को बैरंग पत्र भी भेजते थे और इस संतोष से वंचित होना नहीं चाहते थे ।"[१]

इस प्रकार पत्र-साहित्य, साहित्य का एक विशिष्ट रूप है । अतएव उसका उद्देश्य साहित्य के व्यापक उद्देश्य से भिन्न नहीं है । आत्माभिव्यक्ति, आत्माख्यान, ज्ञानोपलब्धि, आत्म-तोष आदि पत्र-लेखक के प्रमुख प्रयोजन हैं ।

पत्र-साहित्य के तत्त्व-विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पत्र का अपना विशिष्ट रूप-विधान होता है । प्रत्येक कृति के समान इसका भी एक निजी आकार और बाह्य ढांचा होता है जो हमारे मनश्चक्षुओं के सम्मुख उसके नाम-मात्र से स्पष्ट हो जाता है । पत्रलेखन की अपनी शैली होती है जिसमें आत्मीयता का गुण प्रमुख रूप से पाया जाता है । यद्यपि अन्य साहित्यिक विधाओं के कुछ तत्त्व इसमें तथा इसके कुछ अंश अन्य विधाओं में पाये जाते हैं, तथापि यह एक स्वतंत्र विधा है । इस विधा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लेखक का ध्यान कला-प्रदर्शन या लोकप्रियता की ओर नहीं होता । वह अपने मनोभावों को कागज़ पर बहा देता है । इस निर्व्याजता, सरलता और स्वाभाविकता में ही पत्र की महत्ता है ।

---

१ "ग़ालिब के पत्र" भाग - १ (१९५८),
संपा० श्री राम शर्मा तथा श्री रामनिवास शर्मा,
भूमिका, पृ० ६ ।

पत्रों का वर्गीकरण

किसी भी साहित्य-रूप का सांगोपांग अध्ययन तब तक सम्भव नहीं जब तक उसे वर्गीकृत कर उसके प्रत्येक वर्ग का समुचित विश्लेषण-विवेचन न किया जाय । इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए यहां पत्रों के वर्गीकरण पर विचार किया जाता है । यद्यपि पत्रों का वर्गीकरण एक दुष्कर कार्य है, तथापि अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से पत्रों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है । संस्कृत के विद्वानों ने भी पत्रों के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की है । अत: सर्वप्रथम उन्हीं के द्वारा किये गये वर्गीकरण पर हम विचार करेंगे । तत्पश्चात् पाश्चात्य और हिन्दी विद्वानों द्वारा किये गये वर्गीकरण पर अनुक्रम से विचार किया जायेगा ।

१ - संस्कृत विद्वानों द्वारा किया गया वर्गीकरण :

पत्र-लेखन की कलात्मक साहित्यिक परिपाटी की दृष्टि से संस्कृत में अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं जिनमें वररुचिकृत "पत्र-कौमुदी," चिमनलाल दलाल द्वारा सम्पादित "लेखपद्धति", दलपतिराय कृत "प्रशस्ति-रत्नकोष," बालकृष्ण त्रिपाठी कृत "प्रशस्तिकाशिका" आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं ।

"पत्र-कौमुदी" विविध प्रशस्तियों की लघु रचना है जिसके रचयिता के रूप में वररुचि का उल्लेख मिलता है । इस रचना की हस्तलिखित प्रतियां शोध-भाण्डारों में संरक्षित हैं और इसके सम्यक् पाठ के सम्पादन की आवश्यकता है । बुलेटिन आफ दी डेकेन कालेजन रिसर्च इंस्टीट्यूट के भाग-२०, खण्ड १-४ में डा० सुरेशचन्द्र बनर्जी ने पत्र-कौमुदी का प्रकाशन कराया है । हिन्दी में इसका अनुवाद श्रीमन्नारायण द्विवेदी ने किया है जो पीयूष प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है । इसमें पत्र-पाठ के नियम के अन्तर्गत शुभ, अशुभ और गोपनीय पत्र-प्रकारों का उल्लेख मिलता है[१] । शुभ पत्र से पत्र-कौमुदीकार का आशय सुखद-सम्वाद से युक्त पत्र से है

---

१ "पत्र-कौमुदी", संपा० श्रीमन्नारायण द्विवेदी, पृ० २० ।

जो सबके सामने पढ़ा जा सकता है । अशुभ पत्र दु:खद समाचार से तथा गोपनीय पत्र रहस्यमय समाचार से युक्त होने के कारण सबके सामने पढ़े नहीं जा सकते । इस प्रकार यहां एक दृष्टि से सार्वजनिक और वैयक्तिक पत्रों का संकेत किया गया है ।

गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़, बड़ौदा से प्रकाशित "लेखपद्धति" का रचनाकाल मिश्रित संस्कृत प्रयोग के आधार पर १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया गया है । इसमें राजादेश, शासनपत्र, राजविज्ञप्तिका, गुरुविज्ञप्तिका, पितृविज्ञप्तिका, मातृविज्ञप्तिका, स्वामिलेख, मूल्यलेख आदि विविध प्रकार के पत्रों के नमूने दिये गये हैं । इन मुख्य पत्र-प्रकारों के अतिरिक्त कुछ रोचक उपभेदों-जैसे, प्रसन्नभार्या भर्तृलेख, सरूष्टभर्या भर्तृलेख, सरोष्टभार्या भर्तृलेख आदि के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं ।[1] इस प्रकार पत्र के इन भेदोपभेदों में हमें मनोरंजन की सामग्री भी मिलती है ।

विश्वेश्वरानन्द संस्थानम्, होशियारपुर से प्रकाशित "प्रशस्तिकाशिका" की प्रस्तावना में श्रीदलपतिराय कृत "प्रशस्तिरत्नकोष" के पत्र-वर्गीकरण की चर्चा की गयी है । तदनुसार पत्र को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है-[2] (१) सन्देशात्मक पत्र, (२) व्यवहारात्मक पत्र और (३) निदेशात्मक पत्र । सन्देशात्मक पत्रों से ग्रंथकार ने वैयक्तिक, व्यवहारात्मक पत्रों से व्यवहार-सम्बन्धी और निदेशात्मक पत्रों से राजकीय पत्रों की ओर संकेत किया है । यह वर्गीकरण ऊपर के दो ग्रंथों में निर्दिष्ट वर्गीकरण से अधिक तर्कसंगत है ।

२ - पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किया गया वर्गीकरण :

पश्चिम में पत्रों का वर्गीकरण और स्वरूप-निरूपण सबसे पहले यूनानी और रोमन रिटरिसियन अर्थात् वक्तृता-शास्त्र के आचार्यों ने किया है । प्रोफेसर सेन्टसबरी ने स्वसम्पादित "ए लेटर बुक" शीर्षक पुस्तक में प्रसिद्ध यूनानी वक्तृता शास्त्र-विशारद डेमैट्रियस द्वारा किये गये विस्तृत

---

१ "लेखपद्धति" (१९२५), मेन्युस्क्रिप्ट- बी, पृ० २ ।

२ "प्रशस्तिकाशिका" (१९६७), संपा० के०बी० शर्मा, भूमिका, पृ० १३ ।
"तत्र तावत् पत्रं त्रिधा, सन्देशात्मकं, व्यवहारात्मकं, निदेशात्मकं च।

पत्र-वर्गीकरण को बड़े उपयुक्त ढंग से समझाया है ।[1] डेमेट्रियस ने निम्न-लिखित पत्र-प्रकारों का उल्लेख किया है :-

मैत्रीपूर्ण पत्र, सिफारिशीपत्र, भर्त्सनापत्र, तिरस्कार पत्र, सम्वेदना पत्र, शिक्षात्मक पत्र, चेतावनीपत्र, धमकी पत्र, निन्दा पत्र , स्तुतिपत्र, प्रेरणादायक पत्र, प्रार्थना पत्र, विवाद पत्र, समाधान पत्र , रूपकात्मक पत्र, व्याख्यात्मक पत्र, आरोपात्मक पत्र, सुरक्षा पत्र, बधाई पत्र, व्यंग्यात्मक पत्र और धन्यवाद पत्र । नि:संदेह यह सूची अधिक लम्बी है ।

जोसेफ शिप्ले ने अपने विश्व वाङ्मय कोश में रोमन वक्तृता-शास्त्र-विशारदों के जिस वर्गीकरण की चर्चा की है उसमें पत्रों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है - (१) व्यक्तिगत पत्र (परसोनालिस)और (२) व्यावसायिक पत्र (निगोशियालिस)[2] । इन दो वर्गों के पत्रों को लेखक के उद्देश्यानुसार वर्णनात्मक, अभिव्यक्तिप्रधान, परामर्शयुक्त आदि अनेक उपविभागों में बांटा जा सकता है । इन दो वर्गों के अतिरिक्त शिप्ले ने एक तीसरे पत्र-प्रकार का उल्लेख भी किया है और वह है खुला पत्र - (ओपन लेटर) । यह पत्र एक व्यक्ति को सम्बोधित तो होता है किन्तु इसमें लेखक का उद्देश्य यही रहता है कि सभी लोग उसकी बातें सुनें और

---

1 " A Letter Book "(1922), Introduction, P. 7-8.

" Thus the so-called Demetrius Phalereus, who has left us a capital general remarks on letter-writing, elaborately divides its kinds, with prescription for writing each, into "friendly", "Commendatory", "reproving", "objurgatory", "Consolatory", "Castigatory", "admonishing", "threatening", "Vituperatory", "Laudatory", "persuasive", "begging", "Questioning", "answering", "allegorical" , explanatory", "accusing", "defending", "Congratulatory", "ironic", and "thankful".

2 " Dictionary of World Literature", P. 250.

जानें । इसमें बातचीत की शैली के स्थान पर विचारात्मकता एवं तार्किकता का प्राधान्य रहता है । इस प्रकार यह वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है । हिन्दी के कई विद्वानों ने इसी वर्गीकरण का अनुसरण किया है ।

३ - हिन्दी विद्वानों द्वारा किया गया वर्गीकरण :

जैसा कि पीछे संकेत किया गया है, हिन्दी में सर्वप्रथम पत्र-साहित्य के स्वरूप-निरूपण करने का श्रेय बाबू गुलाबराय को है । उन्होंने पत्र-वर्गीकरण के दो आधारों-विषय और शैली-का उल्लेख करते हुए लिखा है-" आत्मकथा की भांति कुछ पत्रों का महत्व उसके विषय पर निर्भर रहता है, कुछ का शैली पर । जिन पत्रों का विषय और शैली दोनों ही महत्वपूर्ण हों वे साहित्य की स्थायी संपत्ति बन जाते हैं ।"[१]

पत्र-साहित्य के व्यापक स्वरूप को ध्यान में रखकर हिन्दी में प्रकाशित पत्रों को "हिन्दी साहित्यकोश" में दो श्रेणियों के अन्तर्गत रखा गया है-" एक तो निजीपत्र जो प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं लिखे जाते और दूसरे ऐसे पत्र जो बाह्यत: पत्र होते हुए भी वास्तव में साहित्यिक कृति के रूप में लिखे और प्रकाशित किये जाते हैं ।"[२]

"मानविकी पारिभाषिक कोश " में यूनानी भाषण-शास्त्र के आधार पर पत्रों के दो भेद प्रदर्शित किये गये हैं:-"(१)व्यक्तिगत पत्र- जिसमें पत्र-लेखक मित्रता एवं अनौपचारिकता के भावों को व्यक्त करता है और (२) सामान्य पत्र- जिसमें किसी परिस्थिति या समस्या आदि का औपचारिकरीति से अभिलेख होता है । किन्तु आदर्श सदा से "व्यक्तिगत पत्र" ही रहे हैं ।"[३]

१" काव्य के रूप" (१९५४), पृ० २६० ।

२" हिन्दी साहित्य कोश", भाग-१, (सं० २०२० वि०), संपा० - डा० धीरेन्द्र वर्मा और अन्य , पृ० ४७१ ।

३" मानविकी पारिभाषिक कोश "(१९६५), साहित्य-खण्ड, संपा० डा० नगेन्द्र, पृ० १५८ ।

डा० रामअवध द्विवेदी ने पत्रों की तीन कोटियां निर्धारित की है :- (क) निजीपत्र (ख) सार्वजनिक मामलों पर लिखे हुए पत्र और (ग) खुली चिट्ठी ।[1] निजीपत्र के प्रकारों में उन्हों ने अभ्यर्थना के पत्र, सांत्वना के पत्र, उपदेशात्मक पत्र, प्रणय-निवेदन के पत्र, मैत्री-भावना को प्रकाशित करने वाले पत्र आदि अनेक पत्रों का उल्लेख किया है । इस प्रकार इस वर्गीकरण में शिप्ले द्वारा निर्देशित वर्गीकरण तथा प्रो० सेन्टसबरी द्वारा उल्लिखित डेमेट्रियस की पत्र-सूची-दोनों का आधार ग्रहण किया गया है ।

आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने अपने पत्र-वर्गीकरण में शिप्ले द्वारा निर्दिष्ट वर्गीकरण का पूर्णतः अनुकरण किया है ।उन्होंने लिखा है- " लातिन आलंकारिकों ने दो प्रकार के पत्र बताये हैं- १-व्यक्तिगत पत्र (परसोनालिस) और २- व्यावसायिक पत्र (निगोशियालिस)। इन दोनों वर्गों के लेखकों के मुख्य उद्देश्यों के अनुसार अनेक पत्ररूप मिलते हैं - कथात्मक, व्याख्यात्मक, उपदेशात्मक, सांत्वनापूर्ण, पारिवारिक, सामाजिक और अनेक प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध वाले और प्रेम-सम्बन्धी । उपर्युक्त दोनों वर्गों के पत्रों के अतिरिक्त एक तीसरे वर्ग के पत्र भी होते हैं जिन्हें खुले पत्र या लोक-पत्र (ओपन लेटर) कहते हैं जो लक्ष्य तो किये जाते हैं एक व्यक्ति की ओर किन्तु उनका उद्देश्य सबको सूचित करना है ।"[2]

डा० हरदयाल ने अपनी पुस्तक "आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य" में पत्रों के व्यक्तिगत और व्यावसायिक- ये दो वर्ग ही स्वीकार किये हैं ।[3] यही बात हमें श्री धर्मचन्द सन्त और बलदेव कृष्ण की "सिद्धान्तालोचन" शीर्षक पुस्तक में देखने को मिलती है ।[4] डा० सुरेन्द्र माथुर भी पत्रों को दो ही वर्गों में रखने के पक्ष में हैं, किन्तु वे "व्यावसायिक पत्र" के स्थान पर "व्यावहारिकपत्र" शब्द का प्रयोग उचित समझते हैं । उनकी स्पष्ट धारणा है कि "वास्तव में पत्र-साहित्य का महत्व उसके वैयक्तिक होने में ही है । व्यावहारिक पत्र केवल सम्बोधन तथा अंत में लेखक का नाम छोड़कर सच्चे पत्र नहीं कहे जा सकते ।"[5]

---

१ "साहित्यरूप" (सं० २०२३ वि०), पृ० १३९-४० ।
२ "साहित्यानुशासनम्" (सं० २०२६), पृ० १००१ ।
३ "आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य" (१९७२), पृ० १७३ ।
४ "सिद्धान्तालोचन" (प्र०सं०), पृ० २२१ ।
५ "यात्रा-साहित्य का उद्भव और विकास" (१९६२), पृ० ३१६ ।

पं० देवनारायण द्विवेदी ने स्थायित्व की दृष्टि से पत्रों की जो दो श्रेणियां बनाई हैं, वे इस प्रकार हैं :- (१) अल्पकालीनपत्र - जो कुछ ही व्यक्तियों के लिए उपयोगी होते हैं और (२) चिरकालीनपत्र- जो सबके लिए उपयोगी हैं ।[१]

डा० शांति खन्ना ने अपने शोध-प्रबन्ध "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" में विषय और शैली दोनों को ध्यान में रखते हुए पत्रों के पांच प्रकार बनाये हैं- (१) साहित्यिक पत्र, (२) आत्मकथात्मक पत्र (३) अन्य चरितमूलक पत्र (४) वर्णनात्मक पत्र (५) विचार-प्रधान पत्र ।[२]

इस प्रकार "भिन्नरुचिर्हि लोकः" के अनुसार पत्र के अलग-अलग प्रकारों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है ।

निष्कर्ष :

पत्र-वर्गीकरण के विषय में संस्कृत, पाश्चात्य और हिन्दी विद्वानों के विचारों को देखते हुए कहा जा सकता है कि अधिकतम विद्वानों ने पत्र के दो या तीन प्रकार माने हैं । हिन्दी के प्रमुख विद्वानों ने यूनानी वक्तृता-शास्त्र-विशारदों के वर्गीकरण को ही मान्य किया है और यूनानी भाषण-शास्त्र के अनुसार आदर्श सदा से "व्यक्तिगतपत्र" ही रहे हैं।

हिन्दी में अनेक ऐसे पत्र भी प्रकाशित हुए हैं जो बाह्यतः पत्र होते हुए भी वास्तव में साहित्यिक कृति के रूप में लिखे गये हैं । अतः उन्हें विशुद्ध पत्र नहीं माना जा सकता । डा० सुरेन्द्र माथुर का यह कथन सर्वथा योग्य है कि "वास्तव में पत्र-साहित्य का महत्व उसके वैयक्तिक होने में ही है ।" अतएव पत्र-साहित्य के विवेचन में विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के वैयक्तिक पत्रों को स्थान देना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । ये पत्र विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं । ये व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित होते हुए भी सबके लिए उपयोगी हैं । अतः ये "चिरकालीन पत्र" हैं । अगले अध्यायों में हम इन्हीं पत्रों का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन करेंगे ।

---

१ "पत्र-कला" (लेख), "मनोहर" पत्र (१९५६), संपा० सूर्यबलीसिंह, पृ० ४३ ।

२ "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" (१९७३), पृ० ६१ ।